किया और फिर कुर्सी को थोडा सुभद्रा की ओर सरकाकर बोला, "सच कहूँ, बाई जी ! मैंने आज तक ऐसा हुस्न किसी पर नही देखा। जाने कोहकाफ़ से परी उतर आई है !"

"शुक्रिया, यह तो आपकी ज़र्रानवाज़ी है सेठ जी, वर्ना मेरे जैसी लौंडियाँ तो आपका पानी भरने के क़ाबिल भी नही हैं।" सुभद्रा ने पाठ की भाँति रटे हुए इन शब्दो का प्रयोग किया।

"राम-राम-राम ! यह आप क्या कहती हैं, बाई जी ! मैं बिल्कुल सच कहता हूँ। देखिये न, हम लोग कारोबारी आदमी हैं, दिनभर झंझट झेलने के बाद यही कभी-कभी दो घडी शग़ल मे दिल बहला लेते हैं। क्या बताऊँ ! मेरी इतनी उम्र हुई, ऐसी हसीन परी मेरे देखने मे नही आई। अच्छा, यह तो मैंने पूछा ही नही कि आप कहाँ से तशरीफ़ लाई हैं ?"

"मैं पजाब की रहने वाली हूँ, सेठ जी !"

"ओह !" हाथ में गिलास को हिलाता हुआ सेठ बोला, "यह तो और भी अच्छी रही। हम भी पजाब के रहने वाले हैं। बीस बरस से यहाँ बस गए हैं, वैसे वहाँ अब भी हमारी रिश्तेदारी है। हमारे घर के लोग अब भी पजाबी बोलते हैं। मैं भी पंजाबी अच्छी तरह बोल सकता हूँ। तो हमारी बात-चीत भी पजाबी में ही होनी चाहिए।"

"बेहतर है।" सुभद्रा की दृष्टि सेठ के सिर की कोमल टटरी पर जमी हुई थी।

"अच्छा, एक बात कहूँ बाई जी, अगर आप बुरा न माने, तो ?"

"कहिये सेठ जी, बुरा मानने की कौन-सी बात है ?"

सेठ जी पर ह्विस्की ने पूरा अधिकार जमा लिया था ; मस्ती में बोले, "देखिये न, ओह, मैं भूल ही गया। अच्छा, अब पंजाबी में बोलूंगा। देखो, बाई जी," और सेठ जी गगा-यमुनी पजाबी में बातें करने लगे—"मैं अपने दिल की बात कहाँ तुहानूं। अगर तुसी नूं मंज़ूर होवे तो मैं चाहुंदा हूँ, आप इस हाटल नूं छोडके मेरे ही घर दी रौनक वधाओ।"

"एह ते सगों मेरी खुशक़िस्मती होवेगी सेठ जी, जे तुसीं इस

फिर इस प्रकार सुभद्रा की ओर घूमा, जैसे इससे पूर्व उसका इधर ध्यान ही न गया हो ।

"ओहो !" बड़ी गर्मजोशी से पलंग की ओर बढ़ता हुआ बोला, "बाई जी हैं ? हमने देखा ही नहीं । कहिये, क्या हाल-चाल हैं ?"

"आपकी मेहरबानी है, सेठ साहब !" सुभद्रा ने अपने लिए के रटे हुए शब्दों का प्रयोग करते हुए कहा, "तशरीफ रखिये !"

सेठ जी सुभद्रा से थोड़ी-सी दूरी पर बैठ गए । ऐसे स्थानों पर बैठने का ढंग है कि प्रेमी जी मान-मनुहार से थोड़ी दूर बैठें और फिर प्रेमिका के जोर देने के पश्चात् पास जा बैठें ।

"तकल्लुफ न कीजिये, सेठ साहब !" सुभद्रा ने होंठों पर कृत्रिम मुस्कराहट लाकर कहा, "अच्छी तरह इत्मीनान से बैठिये ।"

"शुक्रिया !" कहते हुए सेठ उसके पास जा बैठा ।

थोड़ी देर और इधर-उधर की बातें होती रहीं । सुभद्रा प्रत्येक बात का उत्तर पूरी नम्रता और सम्मान से देती गई, परन्तु यह सब करने के लिए जितना जोर उसे आज लगाना पड़ रहा था, इतना सम्भवतः उसे पहले कभी नहीं लगाना पड़ा था ।

"हाँ, तो कुछ खाना-वाना खाइये सेठ जी !" कहने के पश्चात् सुभद्रा उठकर मेज की ओर बढ़ी । सेठ भी उसके सामने वाली कुर्सी पर जा बैठा । सुभद्रा ने सबसे पहले बोतल का कॉर्क खोला, फिर सोडे की बोतल । दोनों गिलासों में डालने के पश्चात् वह हँसने का अभिनय करती हुई बोली, "नोश फरमाइये, सेठ जी !"

सेठ ने बिना 'न' किये गिलास उठा लिया और सुभद्रा के गिलास के साथ टकराने के पश्चात् गट-गट चढ़ा गया ।

इसके पश्चात् खाना आरम्भ हुआ और साथ ही साथ बातें भी । सेठ जी साथ-साथ पीते भी गए, परन्तु सुभद्रा ने एक ही गिलास लेकर हाथ खींच लिया ।

"अच्छा," दौर के साथ जब सुरूर आना आरम्भ हुआ तो सेठ जी बोले, "बाई जी, आप यहाँ कब तशरीफ लाई हैं ?"

"मुझे सेठ जी, बहुत अर्सा नहीं हुआ ।"

"अच्छा-अच्छा ।" कहते हुए सेठ ने एक और गिलास समाप्त

लिया और फिर कुर्सी को थोड़ा सुभद्रा की ओर सरकाकर बोला, "सच कहूँ, बाई जी ! मैंने आज तक ऐसा हुस्न किसी पर नहीं देखा। जाने कोहकाफ़ से परी उतर आई है !"

"शुक्रिया, यह तो आपकी क़द्रदानी है सेठ जी, वर्ना मेरे जैसी लौंडियाँ तो आपका पानी भरने के क़ाबिल भी नहीं हैं।" सुभद्रा ने पाठ की भाँति रटे हुए इन शब्दों का प्रयोग किया।

"राम-राम-राम ! यह आप क्या कहती हैं, बाई जी ! मैं बिल्कुल सच कहता हूँ। देखिये न, हम लोग कारोबारी आदमी हैं, दिनभर झंझट झेलने के बाद यही कभी-कभी दो घड़ी गाना में दिल बहला लेते हैं। क्या बताऊँ ! मेरी इतनी उम्र हुई, ऐसी हसीन परी मेरे देखने में नहीं आई। अच्छा, यह तो मैंने पूछा ही नहीं कि आप कहाँ से तशरीफ़ लाई हैं ?"

"मैं पंजाब की रहने वाली हूँ, सेठ जी !"

"ओह !" हाथ में गिलास को हिलाता हुआ सेठ बोला, "यह तो और भी अच्छी रही। हम भी पंजाब के रहने वाले हैं। बीस बरस से यहाँ बस गए हैं, पर वहाँ अब भी हमारी रिश्तेदारी है। हमारे घर के लोग अब भी पंजाबी बोलते हैं। मैं भी पंजाबी अच्छी तरह बोल सकता हूँ। तो हमारी बात-चीत भी पंजाबी में ही होनी चाहिए।"

"बेहतर है।" सुभद्रा की दृष्टि सेठ के सिर की कोमल टटरी पर जमी हुई थी।

"अच्छा, एक बात कहूँ बाई जी, अगर आप बुरा न मानें, तो ?"

"कहिये सेठ जी, बुरा मानने की कौन-सी बात है ?"

सेठ जी पर ह्विस्की ने पूरा अधिकार जमा लिया था, मस्ती में बोले, "देखिये न, ओह, मैं भूल ही गया। अच्छा, अब पंजाबी में बोलूँगा। देखो, बाई जी," और सेठ जी गंगा-यमुनी पंजाबी में बातें करने लगे—"मैं अपने दिल की बात कहाँ तुहानूं। अगर तुसी नूँ मंज़ूर होवे तो मैं चाहदा हाँ, आप इस होटल को छोड़के मेरे ही घर की रौनक़ बधाओ।"

जी, जे तुसी इस

चोली नूं पसन्द [illegible]।"

"[illegible] दी क्या बात है, बाई जी! मैं तुहाडे सामने जान वी [illegible] नूं तैयार हाँ। [illegible] चोली [illegible] तुहानूँ। [illegible] दी [illegible]।"

सेठ जी आगे [illegible] सुभद्रा का चेहरा [illegible] से लाल होता जा रहा था, परन्तु [illegible] की तोलती हुई बोली, "पर तुहाडी सेठानी [illegible] न होवेगी?"

"ओ छोड़ो बाई जी, सेठानी [illegible]। [illegible] सेठ-साहूकार लोगों दा [illegible] है। [illegible] तुहानूँ [illegible], [illegible] ओरतां रखिआँ होंदी हैं।"

"चंगा, मैं सोचांगी, सेठ जी!" कहकर सुभद्रा ने बात समाप्त कर दी।

"सोचने दी गल नहीं, बाई जी!" सेठ के हाथ का गिलास काँप रहा था—

"मैंनूँ बताओ कि कितने नालों में तुहाडा गुजारा चंगी तरां चल सकेगा?"

"जो कुछ तुसीं दे दिओगे, सेठ जी!"

"दो-ढाई सौ नाल काम चल जाएगा?"

"सेठ जी, जद तुहाडी खिदमत ही करनी ए तां फिर बहुता की ते थोड़ा की!"

सेठ इस समय नशे की पूरी मात्रा में झूम रहा था; बोला, "अच्छा तीन सौ, बाई जी! अगर इससे भी ज्यादा चाहो, तो भी उज्र नहीं करूँगा। जिसको दिल ही दे दिया, उससे और क्या लुकाना ठहरा!"

"सेठ जी," सुभद्रा उसे गहरी दृष्टि से ताकते हुए बोली, "तुहाडे घर कोई बाल-बच्चा वी है?"

कामातुर हुई सेठ जी की रुचि इस समय और किसी विषय की ओर जाना नहीं चाहती थी, तो भी उसने सुभद्रा के प्रश्न का उत्तर पूरी होश और समझदारी से दिया, "ईश्वर दी किरपा नाल तिन

लड़के ने। वड्डे दो व्याहे होए ने, ओहनाँ दे घर बाल-बच्चे ने। छोटा कालज मे पढ़ता है।"

सुभद्रा का कौतूहल जाग रहा था, जैसे वास्तव में इस सेठ को उसने कहीं देखा है। वह बोली, "तुहाडा घर किहडी गली विच ए, सेठ जी ?"

"बल्लीमारान दी गली।" इस व्यर्थ के प्रश्न-उत्तर से तंग आकर और कुछ उत्तेजित होकर सेठ लड़खड़ाती आवाज मे बोला, "जाण दिओ इनाँ फजूल गल्लाँ नूँ। आओ कोई मुहब्बत-प्यार दीयाँ गल्लाँ करिये !"

'बल्लीमारान दी गली' सुनते ही सुभद्रा के शरीर में मे जैसे आग का भभाका-सा निकल गया। वह कुर्सी की पीठ से पीठ हटाकर सीधी बैठ गई। उसकी आँखों में इस समय हिंसा का दानव जैसे ताण्डव नृत्य कर रहा था। वातावरण उसे बदलता दिखाई दे रहा था। इस पर तुर्रा यह कि सुभद्रा इस समय नशे की दशा में थी, जिसने उसे और भी भयावह बना दिया। सेठ के उत्तर मे वह पूर्णरूप से अपने-आप को उत्तेजित होने से बचाती हुई बोली, "सेठ जी, तुसी बड़े भागाँवाले हो। लड़की कोई नहीं तुहाडी ?"

कुर्सी को पूर्णत. सुभद्रा के पास सटाकर उसकी कमर मे बाँह डालकर सेठ बोला, "लड़की इक होई सी, जिहडी पंज वरसाँ दी उम्र विच ही मर गई।"

"तुहाडा इस्म शरीफ ?"

"नौबत राय।" सेठ ने उत्तर मे कहा। सुभद्रा को अपने ताऊ का नाम मालूम था। वह बोली, "नौबत राय अमृतसरिया ?"

"जी हाँ।"

"तुहाडा कोई भाई गौरीशकर अमृतसर रहँदा सी ?"

"हाँ-हाँ।" सेठ ने विशेष ध्यान से उसकी ओर ताकते हुए कहा—"तुहानूँ उसदा पता ए, बाई जी ?"

"जी हाँ ! ओह मैनूँ बड़ा प्यार करदे सन।" सुभद्रा की आँखों के सामने एक लम्बे समय के पश्चात् आज फिर अपने पिता का चित्र घूम रहा था।

"ऐनी दी बदचोनी सी, तैनी औलाद निकली । उसदा सदा
जिहे मर्दां-दयार दे सुर्ज विच बंद हो गिया सी । ऐसा ही सुणन
विच आया सी ।"

"की लड़का ही सी उसदा ?"

"इक लड़की वी सी ।"

"ओह किथे गई ?"

"क्या पता, बाई जी ! मैं तो ऐसे बेगैरत पुतरों दे मरदे नहीं
सुनणा चाहुंदा । कई साल होए दामोदरी अपणी लड़की नूं नाल लैके
आई सी मेरे मकान ते ।"

"दामोदरी कौन ?"

"ओही मेरे भाई दी औरत ।"

"अच्छा ते फिर तुसां किस तरां इन्तजाम कीता ओहनां मावां-
धीयां दी परवरिश दा ?"

"इन्तजाम ? हरे राम ! हरे राम ! ऐसी बदकार औरत नूं
मैं अपने घर विच रखदा ? मैं ओहनूं उसे वक्त दुतकार के निकाल
दित्ता ।"

"पर उसदी लड़की दा तां कोई कसूर नहीं सी, तुसी उसनूं ही
अपने पास रख लैंदे ?"

"उस बदकार औरत दी लड़की नूं रख लैंदा ? एह, बाई जी,
तुसी की कह रहे हो ? मैं अपणे खानदान दी इज्जत बरबाद कर
लैंदा ? असीं इज्जतदार आदमी ठहरे, बड़े-बड़े लखपतियां नूं नहीं
मिलदे, ते साडे ही घरजाई सांडां पास रखेल रहे, कितनी शर्म दी
गल है ! इसी करके तां ओहनां नाल धर्म-विहार छड दित्ता सी ।"

"ते उस लड़की नूं ही लैकर तुसीं अपणी रखेल बणा लैंदे तां
इस विच की हर्ज सी ?"

सेठ नशे में था, पर इतना नहीं कि इस प्रकार के घृणित उलाहने
को समझ न सके। उसने जलती हुई दृष्टि से सुभद्रा की ओर ताका,
पर शीघ्र ही अपने-आप को सन्तुलित करके बोला, "यह क्या, बाई
जी ! तुसीं पीती ते सिर्फ इक पेग है, इतने नाल ही तुहानूं नशा हो
गया जो गालां बकण लग गए ?"

[illegible]

सुभद्रा ने अनुभव किया—उसका सारा शरीर काँप रहा है।

सेठ [illegible] शालीनता दिखाई, पर मामले को [illegible] रही थी, उसे किसी प्रकार भी [illegible] नहीं था। सेठ सुभद्रा के ऊपर झुककर दोनों बाँहें उसकी कमर की ओर बढ़ाता हुआ बोला, "अच्छा छोड़ो, जाने दो, [illegible] हूँ, आओ दो घड़ियाँ मौज-मेला हो जाए!"

सुभद्रा अपना सन्तुलन खो चुकी थी। उसके अंग-प्रत्यंग से [illegible] फूट रही थी। वह [illegible] से सेठ की ओर देखती हुई बोली, "बस सेठ जी, तुम मेहरबानी करके तकलीफ से बाज आओ।"

उत्तेजित और कामी पुरुषों को निखरे-नखरों और नाज-नखरों के रंग में प्रेम अधिक रसीला लगता है। वे लोग उस प्रेमिका को अधूरा समझते हैं, जो बिना खींचातानी और बिना नानुकर के अपने-आप को उनके सामने फेंक दे। यही कारण है कि सेठ को उसके इन्कार से दुगुना आनन्द आया। वह उठकर खड़ा हो गया और अपनी इच्छा की पूर्ति से पूर्व और भली प्रकार नशे में धुत होने के लिए उसने एक हाथ में बोतल और दूसरे में गिलास पकड़ लिया। बोतल में कुछ घूंट शेष थे। अभी उसने बोतल उलटाई ही थी कि सुभद्रा उठकर बाथ-रूम में जा घुसी। सेठ सम्भवतः उसकी बात को समझ गया। कहीं अन्दर से साँकल न चढ़ा ले, वह उसी प्रकार बोतल और गिलास पकड़े गिरता-पड़ता उसके पीछे बाथ-रूम में जा पहुँचा, और दोनों बाँहें फैलाकर सुभद्रा के सीने की ओर झुका। सुभद्रा पीछे हटती-हटती पिछली दीवार से जा लगी और अब उसके हटने के लिए कोई स्थान शेष नहीं था। क्रोध और घृणा से इस समय वह पूर्णरूप से पागल प्रतीत होती थी। उसका अंग-प्रत्यंग बारूद बना हुआ था।

सेठ उसी प्रकार बाँहें फैलाए उसके सीने से जा लगा। बोतल

और गिलास उसी प्रकार उसने दोनों हाथों में पकड़े हुए थे। काम-वासना और शराब, दोनों नशों ने मिलकर उसे पूरा पागल बना दिया था।

एक ओर कामुकता और नशे का मिला-जुला पागलपन, दूसरी ओर घृणा और प्रतिशोध। दोनों पागलपन इस समय आमने-सामने थे।

सुभद्रा एक बार गला फाड़कर चिल्लाई, "सेठ जी ! होश विच आओ ज़रा, ध्यान नाल देखो मेरे वल ! जाणदे हो, मैं कौण हाँ ? मैं ओही तुहाडी भतीजी हाँ। उस दिन तुसी मैंनूं ते मेरी माँ नूं इस लई धक्के देके घरों कढ दित्ता सी कि सानूं घर वाडन नाल तुहाडी इज्जत बरबाद हो जावेगी, पर अज..." कहते-कहते जैसे सुभद्रा का गला सिल गया। उसकी आवाज फटकर रुक गई।

इधर सेठ की यह दशा थी कि सुभद्रा की कही हुई बातों को न वह सुन सकता था, न ही समझ सकने की शक्ति उसमें शेष थी—उसकी नस-नस में से काम की लपटें उठ रही थीं।

सुभद्रा ने एक धक्का दिया और सेठ गिरता-गिरता कठिनाई से बचा, परन्तु इस धक्के ने उसे शिथिल करने के स्थान पर और उत्तेजित कर दिया। वह इस बार पूरी शक्ति से सुभद्रा की ओर लपका। उधर सुभद्रा का पागलपन भी अब सारी सीमाएँ लाँघ चुका था। उसे पता ही न चला कि किस समय उसने सेठ के हाथ से बोतल छीन ली और गर्दन की ओर से पकड़कर कब सेठ की खोपड़ी में दे मारी।

बोतल जितने ज़ोर से लगी थी, इतने ज़ोर से सुभद्रा का मारने का शायद इरादा नहीं था, परन्तु इस समय वह आपे से बाहर थी।

सेठ के सिर पर बोतल ने कितना घाव किया होगा—इसका उत्तर फर्श पर गिरे काँच के टुकड़े दे रहे थे। बोतल की गर्दन सुभद्रा के हाथ में ही रह गई और उसका शेष भाग सेठ की खोपड़ी में बजकर चूर-चूर हो चुका था।

सेठ के मुँह से एक बार 'आ...' की आवाज निकली और वह उन्हीं पाँवों चित गिरकर अचेत हो गया।

इसी को तो भाग्य की विडम्बना कहते हैं !

जिस रात [illegible]-पुरी में एक सुन्दर [illegible] हुआ था, उसके तीसरे ही दिन रमेन्द्र ने पत्रू द्वारा रतना को बुलावा भेजा और फिर उसी रात वे लोग फ्रण्टियर मेल में सवार हुए।

रमेन्द्र की इच्छा तो अकेले पत्रू को ही साथ ले जाने की थी, परन्तु पत्रू की लाडली कब मानने वाली थी ! लीला न तो अपने पिता से बिछुड़कर रहना चाहती थी, न ही अपनी सहेली अथवा बहन रमेन्द्र की जुदाई सहन कर सकती थी। अतः रमेन्द्र को उसकी जिद के आगे हार माननी पड़ी।

दिल्ली पहुँचकर उन लोगों को रहने का ठिकाना ढूँढने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि नई दिल्ली के पहाड़गंज में देवेन्द्रसिंह की कोठी मौजूद थी। जब-कभी वे काम-काजी मामलों में दिल्ली जाते तो इसी में ठहरते थे, अत. दिल्ली पहुँचकर इन लोगों ने उसी कोठी में डेरा डाला।

रात का खाना खाने के पश्चात् जब रमेन्द्र बिस्तर में लेटी तो एक बार फिर नए सिरे से वह अपने इस उठाए हुए कदम के सम्बन्ध में समीक्षा करने लगी और होते-होते वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि रतना जैसे एक पूर्ण अपरिचित युवक के साथ इस प्रकार यात्रा करके उसने अच्छा नहीं किया। अमृतसर से चलते समय उसके अन्दर जो यह साहस था कि वह रतना की माँ और बहन को अवश्य ढूँढ निकालेगी, इस समय उसे हवाई-विचार-सा प्रतीत होने लगा। दिल्ली देखने का उसके लिए यह पहला ही अवसर था। भूगोल और इतिहास की पूरी जानकारी होने के कारण वह दिल्ली की विशालता से अनजान नहीं थी, फिर भी यहाँ आकर, यहाँ की भीड़ जैसी बाढ़ को देखकर घबरा उठी। यही कारण है कि इस समय उसका हृदय पुकार-पुकारकर कह रहा था, 'यह असम्भव है ! यह अनहोनी बात है।'

दो-चार दिन तक रमेन्द्र और रतना दिन-रात गलियों-मुहल्लों की खाक छानते फिरे, पर सब व्यर्थ। सुभद्रा और दामोदरी को न मिलना था, न मिलीं। इस बीच रतना यदा-कदा रमेन्द्र को कहता—"अब

इसी को तो भाग्य की विडम्बना कहते हैं !

जिस रात [illegible]-पुरी में एक दुखद [illegible] हुआ था, उसके तीसरे ही दिन रमेन्द्र ने पन्नू द्वारा रतना को बुलावा भेजा और फिर उसी रात वे लोग फ्रंटियर मेल में सवार हुए।

रमेन्द्र की इच्छा तो अकेले पन्नू को ही साथ ले जाने की थी, परन्तु पन्नू की लाड़ली कब मानने वाली थी ! लीला न तो अपने पिता से बिछुड़कर रहना चाहती थी, न ही अपनी सहेली अथवा बहन रमेन्द्र की जुदाई सहन कर सकती थी। अतः रमेन्द्र को उसकी जिद के आगे हार माननी पड़ी।

दिल्ली पहुँचकर उन लोगों को रहने का ठिकाना ढूंढने की आवश्यकता नहीं थी, जबकि नई दिल्ली के पहाड़गंज में देवेन्द्रसिंह की कोठी मौजूद थी। जब-कभी वे काम-काजी मामलों में दिल्ली जाते तो उसी में ठहरते थे, अतः दिल्ली पहुँचकर इन लोगों ने उसी कोठी में डेरा डाला।

रात का खाना खाने के पश्चात् जब रमेन्द्र बिस्तर में लेटी तो एक बार फिर नए सिरे से वह अपने इस उठाए हुए कदम के सम्बन्ध में समीक्षा करने लगी और होते-होते वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि रतना जैसे एक पूर्ण अपरिचित युवक के साथ इस प्रकार यात्रा करके उसने अच्छा नहीं किया। अमृतसर से चलते समय उसके अन्दर जो यह साहस था कि वह रतना की माँ और बहन को अवश्य ढूंढ निकालेगी, इस समय उसे हवाई-विचार-सा प्रतीत होने लगा। दिल्ली देखने का उसके लिए यह पहला ही अवसर था। भूगोल और इतिहास की पूरी जानकारी होने के कारण वह दिल्ली की विशालता से अनजान नहीं थी, फिर भी यहाँ आकर, यहाँ की भीड़ जैसी बाढ़ को देखकर घबरा उठी। यही कारण है कि इस समय उसका हृदय पुकार-पुकारकर कह रहा था, 'यह असम्भव है ! यह अनहोनी बात है।'

दो-चार दिन तक रमेन्द्र और रतना दिन-रात गलियों-मुहल्लों की खाक छानते फिरे, पर सब व्यर्थ। सुभद्रा और दामोदरी को न मिलना था, न मिलीं। इस बीच रतना यदा-कदा रमेन्द्र को कहता—"अब

"अच्छा, दो-चार दिन और कोशिश कर लें, नहीं तो फिर लौट चलेंगे।"

"अच्छी बात।"

"पर रतने," किसी गहरे विचार में खोई हुई रमेन्द्र बोली, "मेरी इच्छा है कि पप्पू और लीला को आज ही वापस भेज दिया जाए। तुम तो जानते ही हो कि माता जी लीला को कितना मानती हैं। अगर वह उनके पास होगी तो उन्हें मेरा अभाव ज्यादा नहीं खटकेगा।"

"जैसी आपकी इच्छा।" कुछ असहमत-से रंग में रतना बोला—"पर जब हमें भी जाना ही है तो दो-तीन दिनों में क्या फर्क पड़ जाएगा!"

"यह तो तुम्हारी बात ठीक है, पर···" और इस 'पर' शब्द पर पहुँचते-न-पहुँचते रमेन्द्र की मुख-मुद्रा कुछ परिवर्तित-सी हो गई, जिसे सम्भवतः रतना नहीं जान पाया।

वस्तुतः इधर कुछ दिनों से रमेन्द्र के अन्तर में कुछ विलक्षण प्रकार की आशकाएँ-सी उठने लगी थीं और वे आशकाएँ थी रतना और लीला के बारे में। जब-जब भी उसके सम्मुख रतना और लीला का साक्षात् होता, अनायास ही एक प्रकार का कौतूहल-सा उसके मन में उठने लग जाता—'रतना क्यों उसकी ओर इतना ध्यान देने लगा है? लीला क्यों किसी-न-किसी बहाने उसके सिर पर आ धमकती है, विशेषतया जब-कभी वह रतना से बातें कर रही होती है?···कहीं दाल में कुछ काला तो नहीं?···'

अन्ततः वही हुआ जो रमेन्द्र ने चाहा था—उसी दिन उसने पप्पू और लीला को वापस भेज दिया, क्योंकि माता जी की देख-भाल के लिए उन दोनों का वहाँ जाना अत्यावश्यक है।

छोड़िये, बीबी जी, उनका पीछा । क्यों आप नाहक में अपना कीमती वक्त नष्ट कर रही हैं !" पर रमेन्द्र के सिर पर कुछ ऐसी धुन सवार थी, मानो यह उसके जीवन-मरण का प्रश्न हो । जब-जब भी रतना हताश होकर उसे वापिस लौट चलने को कहता, वह डपट देती, "अरे, तो क्या झक मारने आए थे हम यहाँ ? दो-चार दिन और सही !"

इस परोपकारिणी युवती का त्याग देख-देखकर रतना मन-ही-मन डूबा जा रहा था । यह उसका क्या होता है जो उसकी खातिर रमेन्द्र इतना कष्ट सहन कर रही है ? कुछ भी तो नहीं ! तब रतना का मन होता कि वह इस देवकन्या—इस पतित-पावनी के चरणों की धूल लेकर माथे पर चढ़ा ले ।

यह तो रहा खोज-पड़ताल का मामला । इसके अतिरिक्त इन दिनों रमेन्द्र के मानस-पटल पर कुछ और भी उभर रहा था, जिस बारे में कदाचित् वह स्वयं भी नहीं जानती थी । यदि कुछ जानती थी तो मात्र इतना ही कि रतना के साथ मिलकर घूमने में, उसके साथ बातें करने में उसके मन को एक विशेष प्रकार का सुख-सा प्रतीत होता था । कभी-कभी तो उसे ऐसा भी लगता कि यह गँवार-सा युवक किसी चोर रास्ते द्वारा उसके जीवन में प्रविष्ट हुए चला जा रहा है । नहीं तो इसे और क्या कहा जाए कि जिन लोगों की तलाश में वह निकली थी, जितना ही इस काम में विलम्ब हो रहा था, जितनी ही इसमें सफलता की आशा कम हुए जाती, उसी क्रम से रमेन्द्र के मानस पर एक प्रकार का उल्लास-सा—एक प्रकार का उन्माद-सा छाए चला जा रहा था ।

घर से उत्तरोत्तर पत्र आ रहे थे—'रमेन्द्र, जल्द लौटो !··· तुम्हारी माता की बीमारी एकदम बढ़ चली है···तुम्हारे बिना घर एकदम सूना हो गया है ।···' इत्यादि ।

"तो फिर लौट ही चलें, रतने !" सहसा एक दिन रमेन्द्र ने रतना से कहा—"मेरा मन कहता है कि माँ-बेटी, दोनों दिल्ली में नहीं हैं ।"

"मैं तो पहले से ही आपको यही कह रहा हूँ, बीबी जी, कि अब उनका पीछा करना फ़िज़ूल है ।"

"अच्छा, दो-चार दिन और कोशिश कर ले, नहीं तो फिर लौट चलेंगे।"

"अच्छी बात।"

"पर रतने," किसी गहरे विचार में खोई हुई रमेन्द्र बोली, "मेरी इच्छा है कि पंचू और लीला को आज ही वापस भेज दिया जाए। तुम तो जानते ही हो कि माता जी लीला को कितना मानती हैं। अगर वह उनके पास होगी तो उन्हें मेरा अभाव ज्यादा नहीं खटकेगा।"

"जैसी आपकी इच्छा।" कुछ असहमत-से रंग में रतना बोला—"पर जब हमें भी जाना ही है तो दो-तीन दिनों में क्या फर्क पड़ जाएगा!"

"वह तो तुम्हारी बात ठीक है, पर···" और इस 'पर' शब्द पर पहुँचते-न-पहुँचते रमेन्द्र की मुख-मुद्रा कुछ परिवर्तित-सी हो गई, जिसे सम्भवतः रतना नहीं जान पाया।

वस्तुतः इधर कुछ दिनों से रमेन्द्र के अन्तर में कुछ विलक्षण प्रकार की आशकाएँ-सी उठने लगी थीं और ये आशकाएँ थीं रतना और लीला के बारे में। जब-जब भी उसके सम्मुख रतना और लीला का साक्षात् होता, अनायास ही एक प्रकार का कौतूहल-सा उसके मन में उठने लग जाता—'रतना क्यों उसकी ओर इतना ध्यान देने लगा है? लीला क्यों किसी-न-किसी बहाने उसके सिर पर आ धमकती है, विशेषतया जब-कभी वह रतना से बातें कर रही होती है?···कहीं दाल में कुछ काला तो नहीं?···'

अन्ततः वही हुआ जो रमेन्द्र ने चाहा था—उसी दिन उसने पंचू और लीला को वापस भेज दिया, क्योंकि माता जी की देख-भाल के लिए उन दोनों का वहाँ जाना अत्यावश्यक है।

के कमरे की ओर चल पड़ी।

"रतने !" अधिक देर तक उसकी ओर ताकते रहने के पश्चात् उसने उसे पुकारा, "क्या सोच रहा है सोया-सोया ?"

रतना ने आँखें खोलकर देखा और झट से उठकर बैठता हुआ बोला, "कुछ नहीं, बीबी जी !"

"झूठ मत बोल, रतने !"

"मैं, बीबी जी, यही सोच रहा था कि आप मेरे लिए कितनी परेशान हो रही हैं ? कैसे मैं आपके उपकारों का बदला दूँगा ?"

"पागल !···" रमेन्द्र ने उसकी खाट के निकट बैठकर कहा, "यह तो हुआ, और क्या सोच रहा है ?"

"और मैं यही सोच रहा हूँ, बीबी जी, कि हम जिन्हें खोजने निकले हैं उन्होंने हमें कहाँ मिलना है !"

"चिन्ता न कर तू !" रमेन्द्र ने उसका कन्धा पकड़कर कहा, "ईश्वर ने चाहा तो हम उन्हें खोज लेंगे।"

रतना की आँखें बन्द हो गईं।

शराब अथवा अन्य नशीली वस्तुओं का प्रयोग लोग सम्भवतः इसी से करते हैं कि इससे उनके अन्दर में किसी मस्ती का संचार हो जाता है। परन्तु जिस आत्मिक मस्ती के स्वाद में इस समय रतना की आत्मा विभोर हो रही थी, सम्भवतः संसार की किसी नशीली वस्तु में इस मस्ती का हजारवाँ तो क्या, लाखवाँ भाग भी नहीं होगा। उसका सिर रमेन्द्र के कन्धे से जा लगा। उसे अनुभव हो रहा था, जैसे उसकी माँ, जो पाप की गन्दगी में डूबकर घृणित हो चुकी थी, किसी अमृत की नदी में नहाकर पवित्रता की प्रतिमा बनकर लौट आई है।

रमेन्द्र का हाथ उसके कंधे पर टिका था।

"रतने !"

"जी !"

"मेरे पिता को किस शर्त पर माफ कर सकता है ?"

"यह अधिकार मुझसे आप ले चुकी हैं, बीबी जी ! उनको माफ करना न करना अब आपके हाथ में है।"

सामने रखकर कहने लगी, "ले, इसे पढ़कर सुना !"

रतना ने बहुत अच्छे ढंग से तो नही, पर धीरे-धीरे पढना आरम्भ किया—

"मैं आज अपराधी के रूप में अपनी बच्ची के न्यायालय में पेश होता हूँ और अपनी आत्मा को हाजिर जानकर..."

धीरे-धीरे सारे पन्ने रतना ने समाप्त कर लिये और जब अन्तिम पृष्ठ के यह वाक्य 'क्या मेरी बच्ची मुझे इस योग्य समझती है कि मैं उसके समक्ष क्षमा की प्रार्थना करूँ ?' उसने समाप्त किये तो रमेन्द्र ने देखा—रतना की आँखो में क्रोध के स्थान पर उदारता के भाव झलक रहे थे। रमेन्द्र ने एक बार फिर अपने उसी प्रश्न को दोहराया, "अब बता, रतने ! क्या यह चिट्ठी पढने के बाद भी मेरे पिता को माफ करने की सम्भावना तेरे दिल मे..."

थोडी देर तक रतना चुप रहा। उसकी दृष्टि इन पन्नो पर गडी रही। जब उसने रमेन्द्र की ओर आँखें उठाईं तो रमेन्द्र ने उनमें थोडी-सी नमी देखी—और यह नमी दो-तीन कतरे बनकर रतना की पलकों पर छितर गई। वह भरे हुए गले से कह रहा था, "बीबी जी, मेरी खातिर आप अपने पिता जी को माफ कर दें।"

"आह ! रतने !" उसके दोनो हाथों को अपने हाथों में दबाकर रमेन्द्र बोली, "कितना विशाल हृदय है तेरा ! सचमुच तू 'रतन' है ! इससे मूल्यवान रतन मैंने अपने जीवन मे नही देखा है।"

रतना का सिर इस समय रमेन्द्र के सामने झुका हुआ था और उस झुके हुए सिर पर रमेन्द्र का हाथ फिर रहा था।

२४

...ोज-पड़ताल का क्रम चल रहा था। इस बीच रमेन्द्र का ढीला रहने लगा—कदाचित् अपनी शक्ति से अधिक ...े से। अमीर-रईस की इकलौती पुत्री—जिसे सवारी

के सिवा एक [illegible] की भी ताकत नहीं थी—दुःख के साथ गम मिलकर [illegible] करने का परिणाम कहीं तो होना था। उसे हल्का-हल्का बुखार रहने लगा और खाँसी भी। अतः एक समस्या पर एक और समस्या पैदा हो गई। उसे 'फ्लू' हो गया।

खोज का काम स्थगित ही सा रहा था। अन्तर पड़ा तो इतना ही कि पहले यदि दोनों साथ-साथ घूमा करते थे तो अब अकेला रतना। पर उन माँ-बेटी का कुछ भी पता नहीं चला। रमेन्द्र घर में पड़ी रहती और रतना दिन-भर कभी किसी मुहल्ले का चक्कर काटता फिरता तो कभी किसी कूचे का। शाम को जब वह निराश और थकान से चूर-चूर होकर लौटता तो रमेन्द्र को देख अपना दुःख-दर्द भूल जाता। उधर रतना जितना समय घर से बाहर व्यतीत करता, उसका ध्यान बराबर अपनी 'बीबी जी' की ओर लगा रहता। बहुत बार उसने आग्रह रमेन्द्र से कहा—"अब छोड़िये, बीबी जी, इस झंझट को। हमें लौट जाना चाहिए।"

पर रमेन्द्र का वही रटा-रटाया उत्तर उसे सुनने को मिलता—"एक-दिन और रुक जाएँ तो क्या हर्ज है!"

कुछ तो पूर्णतया से आराम करने और कुछ स्वयं डाक्टर होने के कारण 'फ्लू' का प्रकोप टला और रमेन्द्र का स्वास्थ्य लौटने लगा। जिन कार्य-भार को लेकर वे दोनों आए थे, उसमें सफल होने की आशा अब दोनों में से किसी को भी नहीं रह गई थी। अन्ततः लौट जाने की तैयारी होने लगी।

इसी बीच एक शाम को जब रतना लौटा तो उस पर दृष्टि पड़ते ही रमेन्द्र ने भाँप लिया कि अवश्य ही आज रतना को कुछ-न-कुछ टोह मिली है और उसका अनुमान सत्य ही निकला जब रतना ने उसे बताया—

"आज, बीबी जी, मैं घूमते-घूमते 'रहगड़पुरा' की कंगाल बस्ती में जा निकला और वहाँ पूछताछ करने पर पता चला कि बहुत दिन पहले दो पंजाबी औरतें, जो माँ-बेटी थीं, उस बस्ती में आकर टिकी थीं। साथ में इतना और पता चला कि माँ का नाम था

दामोदरी और बेटी का नाम कौशल्या।"

सुनकर प्रसन्नता के मारे रमेन्द्र की बाँछे खिल उठीं; बोली—"फिर तो, रतने, तुमने आधा काम कर डाला। अच्छा, कल मैं खुद चलूँगी तेरे साथ।"

और दूसरे दिन सूर्योदय होते ही रमेन्द्र और रतना उस गली में जा पहुँचे। वहाँ की औरतों से रमेन्द्र कुरेद-कुरेदकर प्रश्न करने लगी।

बात बहुत दिन पहले की थी, फिर भी रमेन्द्र को अपने मनोरथ में सफलता मिलने की आशा बँध गई।

इस पूछताछ के अन्तर्गत उन्हें और भी कई बातें ज्ञात हुईं, अर्थात् यहाँ पर रहते हुए सुभद्रा ने एक लड़के को जन्म दिया था, तत्पश्चात् दामोदरी की मृत्यु भी इसी गली में हुई थी और इसके कुछ दिन पश्चात् ही सुभद्रा यहाँ से चली गई। किसी ने यह भी बताया कि 'चली' नहीं गई, बल्कि कोई गुण्डा जो बहुत दिनों से उसके पीछे पड़ा था, उसे भगाकर ले गया, इत्यादि।

"तब तो, रतना," रमेन्द्र बोली—"हमें कुछ दिन और रुक जाना चाहिए और एक बार जी-भरकर तलाश करनी होगी। तुमने बताया था न कि सुभद्रा स्वभाव की बहुत भोली-भाली और अत्यन्त सुन्दरी थी? मैं सोचती हूँ दिल्ली जैसे शहर में उस जैसी लड़की का अकेली रह जाना इस बात का सूचक है कि बेचारी ज़रूर गुण्डों के चंगुल में फँस गई होगी। मैंने सुना है कि यहाँ के गुण्डे-बदमाश इस तरह की लावारिस औरतों की टोह में लगे रहते हैं और जब कोई शिकार उनके काबू में आ जाता है तो उसे अक्सर यहाँ की वेश्याओं के पास ले-जाकर बेच दिया करते हैं। क्या जाने उस अभागिन के साथ भी वैसा ही बर्ताव किया गया हो!"

अपनी बहन के सम्बन्ध में ये बातें सुनकर रतना के दिल पर बड़ी चोट लगी, पर यह बात उसे असम्भव या अनहोनी नहीं जान पड़ी। मन-ही-मन वह अपने और अपनी बहन के दुर्भाग्य को कोसने लगा।

पूछा—"रिक्शा क्यों रुकवाया ?"

"ज़रा ठहरिये, बीबी जी !" कहते हुए रतना छलाँग लगाकर रिक्शा से उतरा और बेतहाशा उस ओर भागा जहाँ सड़क के किनारे पुलिस के दो सिपाही एक युवती को दोषी के रूप में घेरे लिये जा रहे थे। युवती की गोद में दो-ढाई वर्ष का बालक था।

रमेन्द्र भी रतना का अनुकरण करते हुए रिक्शा से उतरकर उसी ओर बढ़ गई। मामला क्या है, इसे वह प्राय. समझ गई थी।

"बीबी जी !" चिल्लाने की-सी आवाज़ में रतना ने पुकारा—"मेरी बहन..."

रमेन्द्र का संकेत पाकर सिपाही रुक गए।

"सुभद्रा...आ...आ...आ...!"

"भैया...आ...आ...आ...!"

और देखते-ही-देखते बहन-भाई एक-दूसरे के बाहुपाश में बँध गए। सिपाहियों को रोकने का साहस नहीं हो पाया—कदाचित् बहन-भाई के संगम को देखकर, अथवा एक अमीरज़ादी (रमेन्द्र) से कुछ 'शर्बत-पानी' प्राप्त होने की आशा से। विरोध यदि किसी ने किया तो सुभद्रा की गोद के बालक ने, जो एक अपरिचित को अपनी माँ से लिपटते देखकर विचलित हो उठा था।

इस आकस्मिक दृश्य को पास खड़ी रमेन्द्र स्वप्न की भाँति देख रही थी और उसका सबसे अधिक ध्यान था, उस सुन्दर-से गोल ढगाले-से मुन्ने की ओर, जो इस समय माँ के कन्धे से सिर उठाए आश्चर्यचकित और कुछ सहमी-सी आँखों से इधर-उधर ताकते हुए मचल रहा था। इस पर पहली दृष्टि पड़ते ही रमेन्द्र को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे यह वस्तु उसके लिए नई अथवा अपरिचित नहीं ; अपितु एक लम्बे समय से, जब से उसने होश सँभाली है, इसे देखती आ रही है। बच्चे की आँखें, नाक, ठोडी, माथा, सब उसकी जानी-पहचानी थी, मानो यह उसके पिता का पॉकेट-संस्करण था, जिसमें सूक्ष्म तथा स्थूल के अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं था।

सुभद्रा और रतना की बाँहें अब एक-दूसरे से अलग हो चुकी थीं। चेहरे दोनों के एक-दूसरे के लिए कुछ अपरिचित हो गएथे,

२५

खोज-अभियान और पूछताछ का काम फिर से आरम्भ हो गया और पहले की अपेक्षा अधिक जोर-शोर से । इधर अन्तराल में रमेन्द्र को [illegible] भी आ गए थे, जिनमें उसे शीघ्रातिशीघ्र लौटने को लिखा होता और साथ में यह भी कि रमेन्द्र की माँ अब कुछ ही दिनों की पाहुनी है ।

अब रमेन्द्र करे तो क्या करे ! एक ओर तो माँ की ममता उसे कचोट रही थी, दूसरी ओर रतना के प्रति अपने कर्तव्य-पालन का दायित्व उसे चैन नहीं लेने दे रहा था । उस पर एक परेशानी और कि रतना इन दिनों कुछ अधिक ही कमजोर रहने लगा था । जब भी देखो, [illegible] रहता है ।

रमेन्द्र ने रतना को इतना गुम-सुम और इस सीमा तक आतुर पहले कभी नहीं देखा था । रतना की यह मनोदशा उसके मर्म-स्थल को डंक रही थी । वह समझ नहीं पा रही थी कि किस ढंग से वह रतना को ढाढ़स बँधाए, जिससे वह उसकी मानसिक पीड़ा को कम करे, क्योंकि उसी के पिता की कृपा से आज बेचारे की दशा यहाँ तक आ पहुँची है ।

'चाहे कुछ भी हो,' रमेन्द्र ने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया—'खोज के साथ-साथ मुझे रतना की मानसिक स्थिति को भी सुधारना होगा ।'

⊙

सुबह खाना खाकर दोनों पूर्ववत् आज भी घर से निकलकर रिक्शा में सवार हुए । प्रतिदिन की इस भागदौड़ के मारे रतना ऊब-सा उठा था । उसकी इस ऊब को भाँपते हुए रमेन्द्र उसकी उद्विग्नता को कम करने का भरसक प्रयत्न कर रही थी, पर रतना का ध्यान दूसरी ओर था ।

"रिक्शा रोको भाई जरा !" सहसा रतना ने रमेन्द्र की ओर मुड़कर पुकारा ।

"क्या बात है, रतना ?" रिक्शा के रुकने पर रमेन्द्र ने उससे

पूछा—"रिक्शा क्यों रुकवाया ?"

"ज़रा ठहरिये, बीबी जी !" कहते हुए रतना छलाँग लगाकर रिक्शा से उतरा और बेतहाशा उस ओर भागा जहाँ सड़क के किनारे पुलिस के दो सिपाही एक युवती को दोषी के रूप में घेरे लिये जा रहे थे। युवती की गोद में दो-ढाई वर्ष का बालक था।

रमेन्द्र भी रतना का अनुकरण करते हुए रिक्शा से उतरकर उसी ओर बढ़ गई। मामला क्या है, इसे वह प्रायः समझ गई थी।

"बीबी जी !" चिल्लाने की-सी आवाज़ में रतना ने पुकारा—"मेरी बहन..."

रमेन्द्र का संकेत पाकर सिपाही रुक गए।

"सुभद्रा...आ...आ...आ...!"

"भैया...आ...आ...आ...!"

और देखते-ही-देखते बहन-भाई एक-दूसरे के बाहुपाश में बँध गए। सिपाहियों को रोकने का साहस नहीं हो पाया—कदाचित् बहन-भाई के मिलन को देखकर, अथवा एक अमीरज़ादी (रमेन्द्र) से कुछ 'चाय-पानी' प्राप्त होने की आशा से। विरोध यदि किसी ने किया तो सुभद्रा की गोद के बालक ने, जो एक अपरिचित को अपनी माँ से लिपटते देखकर विचलित हो उठा था।

इस आकस्मिक दृश्य को पास खड़ी रमेन्द्र स्वप्न की भाँति देख रही थी और उसका सबसे अधिक ध्यान था, उस सुन्दर-से गोल बताशे-से मुन्ने की ओर, जो इस समय माँ के कन्धे से सिर उठाए आश्चर्यचकित और कुछ सहमी-सी आँखों से इधर-उधर ताकते हुए मचल रहा था। इस पर पहली दृष्टि पड़ते ही रमेन्द्र को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे यह वस्तु उसके लिए नई अथवा अपरिचित नहीं ; अपितु एक लम्बे समय से, जब से उसने होश सँभाली है, इसे देखती आ रही है। बच्चे की आँखें, नाक, ठोड़ी, माथा, सब उसकी जानी-पहचानी थी, मानो यह उसके पिता का पॉकेट-संस्करण था, जिसमें सूक्ष्म तथा स्थूल के अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं था।

सुभद्रा और रतना की बाँहें अब एक-दूसरे से अलग हो चुकी थीं। चेहरे दोनों के एक-दूसरे के लिए कुछ अपरिचित हो गए थे,

हो जाए ! उसका मन हुआ कि वह अति कोमल एवं स्नेहमय शब्दों द्वारा उसको धैर्य बँधाए। पर उसे इस बात की भी आशंका थी कि कहीं उसका परिणाम उल्टा ही न हो ! कहीं रतना धाड़ें मारकर रोने न लग जाए ! उसने मौन बने रहना ही ठीक समझा।

"चलो कचहरी !" रमेन्द्र ने रिक्शा वाले को आदेश दिया।

२६

सैशन कोर्ट के सामने जाकर रिक्शा रुका। अदालत के बाहर बड़ी भारी भीड़ लगी हुई थी। लोग बड़ी बेचैनी से किसी अपराधी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

रमेन्द्र और रतना उतरकर इसी भीड़ में से निकलते हुए एक ओर जा खड़े हुए। भीड़ में से निकलते-निकलते कई प्रकार की आवाजें रतना के कानों में पड़ीं, 'वेश्या !···खून !···सेठ···'

"चलो कहीं एक ओर चलकर बैठें !" रमेन्द्र ने रतना से कहा। उसने देखा—रतना इस समय ग़म के किसी गहरे गढे में गिरा पड़ा था। उसकी आँखों की पुतलियां स्थिर थीं।

उसका हाथ पकड़े रमेन्द्र कुछ दूर एक घने वृक्ष के तने के आस-पास बनी बेंच पर जा बैठी। रतना को भी उसने अपने साथ बिठा लिया।

रतना के कानों में बराबर सिपाही की कही हुई 'दफा तीन सौ दो' गूँज रही थी। उसने पास बैठी रमेन्द्र से पूछा, "तीन सौ दो दफा क्या होती है, बीबी जी ?" उसने अपने मन में जो कुछ इस 'दफा' का अनुमान लगाया था, वह यही था कि कोई चोर-चकारी की 'दफा' होगी, पर झट ही उसे अपनी बहन के साफ पहरावे का ध्यान हो आया और वह सोचने लगा, 'उसकी आर्थिक दशा ऐसी तो नहीं लगती थी कि उसने किसी की चोरी की हो।'

"साधारण-सी होती है।" दफा का अर्थ जानते-बूझते भी रमेन्द्र

से वे सफल गईं, पर रमेन्द्र को उस समय न रतना का ध्यान था न
अपराधी का, वह [illegible] और ही उलझन को सुलझाने में लगा हुआ
था। सुनी थी [illegible] सामने अकस्मात् उसकी आँखों के सामने घूम रहा
था, जिस पर उसकी दृष्टि पड़ी हुई उसे अनुभव हुआ, जैसे उसका
लिया ही इसके मन में उसके सामने आ गया है—वही सूरत, वही
प्रकार के नाक-नक्श।

रमेन्द्र का यह [illegible]-सा उत्तर सुनकर रतना को विश्वास नहीं हुआ। पास से गुजरते एक युवक से उसने आगे बढ़कर पूछा, "क्यों जी, यह भीड़ आज यहाँ इतनी इकट्ठी हुई है? किसी लीडर का मुकद्दमा है क्या?"

"तुम्हें नहीं मालूम?" अपरिचित व्यक्ति ने कहना आरम्भ किया, "उस वेश्या के मुकद्दमे का हुक्म सुनाया जाना है आज।"

"कौन वेश्या?"

"तुम यहाँ नहीं रहते? दिल्ली में तो इस मुकद्दमे की जहाँ-तहाँ चर्चा है।"

"माफ करना, मैं परदेशी हूँ!" रतना ने उत्तर में कहा।

"तभी!" कहते हुए वह अपनी जानकारी का प्रभाव जमाने लगा, "किसी होटल में, सुना है, उनकी हुई थी। उसकी दोस्ती थी यहाँ के एक साहूकार के साथ। थोड़े ही दिनों की बात है—होटल में कहीं दोनों इकट्ठे हुए। कहते हैं—साहूकार के पास उस समय माल काफी था। बस, बोतल सिर में मारकर पार बुलाया और सब-कुछ लूट लिया, पर पाप कभी छिपाए छिपता है कभी? पुलिस ने पकड़ लिया उसे।"

सुनने के पश्चात् रतना लौटकर अपने स्थान पर आ बैठा। वह अभी बैठा ही था कि उसने देखा—सारी भीड़ घूमकर एक ओर दौड़ी जा रही थी और जाते-जाते लोग कह रहे थे, "आ गई! आ गई!..."

रतना और रमेन्द्र भी उसी ओर उठकर चले। यहाँ पहुँचकर उन्होंने जो कुछ देखा, उसने रतना के होश-हवास छीन लिये। वही थी और दो सिपाही थे। भीड़ को हटाते हुए सिपाही बड़ी साव-

सिपाही मुलजिमों को जेल की ओर लिये जा रहे थे।

रतना की टाँगें काँप रही थीं। वह पीछे घूमा और राह-चलते एक काले-से व्यक्ति को, जो हाथों में पकड़े हुए फाइलों के बण्डल से किसी वकील का मुन्शी अथवा कोई अर्जीनवीस प्रतीत होता था, रतना ने पूछा, 'क्यों जी, तीन सौ दो दफा क्या होती है ?"

"तुम्हें नहीं मालूम ?" गुजरने वाला झटपट कहकर चला गया "खून का जुर्म।"

सिपाहियों ने असामी को जेल-इन्चार्ज के हवाले किया। रमेन्द्र शीघ्रता से आगे निकल गई और कुर्सी पर बैठे एक बैलट-धारी सिख इन्स्पेक्टर से हाथ जोड़कर 'सति श्री अकाल' बुलाई।

सभ्य बातचीत और उसके स्वच्छ पहनावे का इन्स्पेक्टर पर अच्छा प्रभाव पड़ा। रमेन्द्र बोली, "मैं इस मुलजिम की रिश्तेदार हूँ। अगर कृपा करके दो पल के लिए मुझे इससे मुलाकात की आज्ञा दे सकें, तो…"

"आप इसकी रिश्तेदार हैं ? क्या नाम है आपका ?"

"जी, रमेन्द्र कौर।"

"माफ करना," इन्स्पेक्टर आशंकित दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए बोला, "इस बात का कैसे विश्वास किया जाए कि एक बाजारी औरत की रिश्तेदारी आपसे है। अगर इसे सच मान भी लूँ तो आप जानती हैं तीन सौ दो के मुलजिम से जेलर अथवा सैशन जज के अतिरिक्त कोई भी मुलाकात करवाने की अथॉरिटी नहीं रखता।"

इतनी देर में तीन-चार सिपाही कुछ अदालती कागज-पत्र लेकर आए। इन्स्पेक्टर उनकी ओर मुड़ गया और फिर उसने रमेन्द्र की ओर देखने की आवश्यकता न समझी।

रमेन्द्र लौटकर रतना के पास, जो थोड़ी दूरी पर सिर झुकाए खड़ा था, आ गई।

इसके पश्चात् उसने पर्स में से लैटर-पैड निकालकर झटपट एक प्रार्थना-पत्र सैशन जज के नाम लिखा और शीघ्रता से अदालत के कमरे में जा घुसी।

अन्दर जाकर बिना झिझके उसने चिट्ठी सैशन जज को, जो

किसी मुक़द्दमे की सुनवाई शुरू हुआ था, वे [illegible] में आ पहुँचे। [illegible] करने के [illegible] कमरे में ३०२ की अपराधिन [illegible] थी। [illegible] था।

[illegible] को लेकर अन्दर गए, [illegible] अन्दर चली गई। [illegible] समाप्त हो चुकी [illegible] स्वीकार कर चुकी थी। न थी, क्योंकि अपराधिन [illegible] की। आज [illegible] सुनाया जाता था।

जज ने अपराधिन [illegible] का निर्णय सुना दिया—

"अपराधिन सुभद्रा जिसने [illegible] धनी लाला नौबत-राय का [illegible] खून किया है, और जो अपने अपराध को स्वीकार कर चुकी है, सेशन कोर्ट ने [illegible] अदालत की ओर से भेजे गए इस केस पर बहुत अच्छी प्रकार विचार किया है और अन्ततः अदालत इस परिणाम पर पहुँची है कि अपराधिन वास्तव में ही धारा ३०२ की अपराधिन है, जोकि एक विख्यात व्यक्ति का खून करने और उसको स्वीकार करने के पश्चात् यह बताने से इन्कारी है कि किन कारणों के अधीन उसने यह खून किया। अतः अदालत मनस्मात सुभद्रा को मौत की सजा की आज्ञा देते हुए माँग करती है कि अपराधिन को तब तक फाँसी पर लटकाया जाए जबतक उसकी जान न निकल जाए।"

निर्णय के पश्चात् सारी भीड़ में सनसनी फैल गई। सुभद्रा ने निर्णय के अन्त में केवल एक बार आँखें उठाईं। उसने कंधे से लगे हुए बच्चे को सीने से दबाया और चूमा। यह सारा कार्य उसने एक [illegible]न की भाँति किया। उसकी आँखें गीली हो उठीं। इसके पश्चात् सिपाही उसे बाहर ले गए।

रवीन्द्र ने रतना को, जो अर्द्ध-चेतना की दशा में दीवार से लगा [illegible]ा था, सँभाला और बाहर जाकर टैक्सी पकड़ी।

वहाँ से चलकर रमेन्द्र और रतना की टैक्सी जेल के गेट के सामने आकर रुकी। रमेन्द्र ने मुलाकात के लिए प्रार्थना पत्र लिख-कर अन्दर भेजा और स्वीकृति की प्रतीक्षा में वह दोनों जेल के आँगन में घूमकर समय बिताने लगे।

प्रार्थना-पत्र किसी निकट के सम्बन्धी का ही स्वीकार हो सकता है—रमेन्द्र इस कानून को जानती थी, इस कारण उसने रतना की ओर से प्रार्थना-पत्र दिया था।

घण्टा-भर प्रतीक्षा करने के पश्चात् मुलाकातें आरम्भ हुईं। रमेन्द्र और रतना भी प्रतीक्षा करते रहे धीरे-धीरे सारी मुलाकातें समाप्त हो गईं, परन्तु इनकी बारी अभी तक नहीं आई। अन्ततः इन्होंने जेल की ड्योढ़ी में से एक सिपाही को आते देखा, जिसके हाथ में इन्हीं का प्रार्थना पत्र था और उसने 'रतनबाई' आवाज दी।

रतना ने आगे बढ़कर कागज पकड़ लिया, जिसकी पीठ पर अंग्रेजी में कुछ लिखा हुआ था। रमेन्द्र ने पढ़ा—'मुजरिम का कहना है कि उसका कोई भाई नहीं है, वह मुलाकात नहीं करना चाहती।'

निराशा पर और निराशा! रतना के चेहरे पर मृत्यु सी छा गई। रमेन्द्र उसे धैर्य बंधाती हुई बोली, "तो क्या हुआ! मैं मुलाकात की आशा नहीं छोड़ूँगी, चाहे जेलर के घर तक क्यों न जाना पड़े! बस, अब लौट चल!"

२७.

रतन के हृदय की परेशानी आज सीमा पर पहुँच गई थी। अपने कमरे में लेटे हुए वह जैसे-जैसे आज के देखे हुए दृश्य को दोहराता, उसे प्रतीत होता जैसे कोई उसके हृदय में से अंतड़ियों को खींच रहा है। जिस बहन का मुँह देखने के लिए वह लम्बे समय से बेचैन हो रहा था, उसे देखने के पश्चात् आज सदा के लिए उसकी देखने की भूख मिट गई। अपितु वह पश्चात्ताप कर रहा था कि क्यों

वह जिन्दगी में आया। न आया तो वह गया और कभी न भरने वाला घाव उसके हृदय में न समाता। जिस दशा में वह दिन काट रहा था, इससे तो यही दशा हजार-गुना अच्छी थी। वह, जिसे आज उसने देखा है, क्या आराम में नहीं? उसकी मरन थी? वह भोली-भाली नहीं थी, वह तो पक्की नागिन थी—मनुष्यों के कलेजे खाने और खून पीने वाली नागिन!

फिर वह सोचता—मुझे उसकी माँ के विषय में पूछना चाहिए था कि वह कब मरी। इसके साथ ही रतना का ध्यान उस बालक की ओर चला गया जो सुभद्रा कमरे में लगाए घूमती थी। उसके जलते हृदय पर गम के छींटे-से आ पड़े।

'सुभद्रा ने मेरी मुलाकात मंजूर नहीं की। कहला भेजा कि मेरा कोई भाई नहीं। निस्सन्देह उसका कोई भाई नहीं। वेश्याओं का शायद कोई भाई नहीं होता होगा। आह! मैं अपने दिल में से यह विचार कैसे निकालूँ कि मैं एक वेश्या का भाई हूँ? उसने मुलाकात नहीं की, अच्छा ही हुआ। अगर मैं उसे दोबारा देखता तो जाने मैं अपना सन्तुलन ही खो बैठता और बहन के साथ भाई भी खून के मुकद्दमे में फँस जाता।'

इसी मानसिक आग के अंगारों पर जलते हुए रतना ने दो घण्टे बिता दिये। शाम हुई और बत्तियाँ जल उठीं। इसी समय रमेन्द्र ने कमरे में प्रवेश किया।

"आप कहाँ गई थीं, बीबी जी?" रतना ने उलाहने-भरी आवाज में कहा, "आज ही तो मुझे आपकी मदद चाहिए थी!"

"क्यों?" रतना की दशा को समझते हुए रमेन्द्र उसके पास आ बैठी, "मैं जेलर की कोठी गई थी।"

'मुलाकात की इजाजत लेने?'

"हाँ।"

"मिल गई?"

"हाँ, कल सुबह हम लोग चलेंगे। खुली और बेरोक मुलाकात होगी। जेलर बड़ा नेक और मिलनसार था।"

रतना ने अपने हृदय के दुख को प्रकट करते हुए कहा—"तो

दीदी जी, मुझे न ले जाना। जितना भी मैंने उसे आज देखा, वह मेरे हृदय के जलाने के लिए काफी है। अब दुबारा उसके सामने ले-जाकर मेरे जले दिल को और न जलाना। मैंने अपनी आँखों से जो कुछ देखा है, वह देखने से पहले ही ये आँखें अंधी क्यों न हो गईं! मेरी जिन्दगी बरबाद करने में माँ ने जो थोड़ी-बहुत कमी बाकी रखी थी, वह उसने पूरी कर दी। चलो अच्छा हुआ, सब-कुछ ख़त्म। न होगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। अब तो मेरा दिल यही चाहता है कि जितनी जल्दी हो सके, वह डायन अपने पाप की गठरी लेकर इस दुनिया से उठ जाए। मैं कोई बड़े घराने का नहीं हूँ पर मेरी नसों में आखिर किसी नेक आदमी का खून तो है! मैं खुद नहीं मरता आज अपनी बहन को देखता…" रतना इससे अधिक नहीं बोल सका। उसके शरीर का सारा रक्त जैसे उसके चेहरे पर आ रहा था।

रमेन्द्र इस समय पूर्णरूप से उसके दुःख को अनुभव कर रही थी। उसे रतना की बातों में कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं प्रतीत होती थी। उसने अगले दिन अकेले ही मुलाकात के लिए जाना ठीक समझा; इस दशा में उसे साथ न ले जाना ही अच्छा रहेगा।

वह बोली, "अच्छा, तो मैं अकेली ही जाऊँगी। हाँ सच, तू कह रहा था कि आज तुझे मेरी ज़रूरत थी?"

"बड़ी सख्त ज़रूरत थी, दीदी जी! मैंने ये दो-ढाई घण्टे का समय चिन्ता में जलते बिताया है। मेरे दिल की बची-खुची शान्ति भी छिन गई। क्या इसी बहन को ढूँढने के लिए मैं भटकता था और साथ ही आपको भी मुसीबतों में डाले हुए हूँ? अगर मुझे मालूम होता कि वह इस तरह की गन्दी जिन्दगी बिता रही है तो मैं क्यों उसके लिए मारा-मारा फिरता?" बोलते-बोलते रतना का चेहरा और भी लाल हो गया और उसकी आँखों में खून उतर आया।

रतना को वास्तव में इस समय किसी ऐसे वैद्य की आवश्यकता थी, जो उसके हृदय के घावों पर फाहे रख सके; और रमेन्द्र ने डाक्टरी के कर्तव्य [illegible] से पूरा किया। बहुत रात

गया।

"और और भी कुछ दूँ।" इसके उत्तर में मैं कुछ [illegible] के [illegible] निकालते हुए रमेन्द्र ने पूछा। [illegible] में [illegible] किशोर [illegible]—[illegible] कुछ!

इधर सुभद्रा ध्यान से इस [illegible] की [illegible] देख रही थी, जो सब-कुछ जानते हुए भी [illegible] अपने ही [illegible] कुछ दे रही थी।

"अच्छा बहन," रमेन्द्र सुभद्रा की ओर मुड़कर बोली, "हमने अभी बहुत-सी बातें करनी हैं। मगर तू अपने भाई के साथ मुझे देखकर जरूर सोचती होगी कि मेरा उससे क्या सम्बन्ध है। तो पहले मैं तुझे उसके बारे में जान-पहचान करा दूँ।"

सुभद्रा पूरे ध्यान से उसकी बातें सुनने के लिए तैयार हो बैठी और रमेन्द्र ने विस्तार से वह सब हाल उसे सुनाना आरम्भ किया, जो पहले दिन तांगे की सवारी से लेकर आज दिन तक उसके साथ व्यतीत हुआ था। रमेन्द्र को भय था कि कहीं मुलाकात का समय उसी की बातों में न लग जाए। उसने सुभद्रा से भी तो बहुत-कुछ सुनना था। अतः अपनी बातों के अन्तिम भाग पर पहुँचकर उसने शीघ्र ही समाप्त करने की चेष्टा की, तो भी आध घण्टे से पूर्व वह इसे समाप्त न कर सकी।

रमेन्द्र जब बोल चुकी तो उसने देखा, सुभद्रा के अंग-प्रत्यंग में रमेन्द्र के प्रति प्रेम और श्रद्धा के भाव थे, और उसकी आंखों में से टप-टप आंसू गिर रहे थे। उसने रमेन्द्र का हाथ पकड़ लिया और बोली, "बहन जी, मुझे नहीं मालूम था कि कभी कीचड़ में से भी कमल पैदा हो जाते हैं। आपने मेरे दुखी भाई का हाथ पकड़कर जिस तरह उसकी डूबती नाव को किनारे लगाया है, कौन इस तरह कर सकता है! आपके सीने में किसी देवी का दिल है।"

"मैंने और किसी के लिए कुछ नहीं किया बहन," रमेन्द्र बोली, "यह सब मैंने अपने पिता की आत्मा को पाप से बचाने के लिए किया है। यों मैं जानती हूँ कि चाहे इससे हजार-गुना ज्यादा करूँ, तुम्हारे परिवार को बरबाद करने का जो पाप उन्होंने किया है,

जानकर तेरी जिन्दगी बरबाद करने का, यह कभी माफ नही किया जाएगा। अच्छा बहन, जितनी जल्दी हो सके, अब तू भी अपना हाल मुझे सुना। इतना तो मैं तुझे पहली बार देखकर ही समझ गई थी कि तूने यह जो कुछ भी किया है, मजबूरियो के हाथो ही किया होगा, पर तेरी जुबान से भी सुनना चाहती हूँ।"

सुभद्रा के चेहरे पर हिंसा की आभा झलक रही थी। उसने अरमानभरा एक साँस भरकर कहा, "बहन जी, एक बडा दुख मेरे दिल में बाकी रह गया कि वह शैतान बिहारी मेरे हाथो से निकल गया। मैं खून की अपराधिन बन ही चुकी थी, मेरा विचार था कि अपने हाथों उसका काँटा भी निकाल देती। पर अफसोस ! वह मेरे हाथ न आ सका।"

"बीबी," किशोर माँ के पास आ खड़ा हुआ और बोला, "तू जो कहती थी कल हम अपने घल तलेंगे।"

दोनो का ध्यान अपनी बातो से हटकर लड़के की ओर खिंच गया। रमेन्द्र उसे जितनी बार देखती, उसके हृदय मे पीडा-सी उठती। बालक की भोली-भाली तोतली बातें सुनकर रमेन्द्र की आँखें भर आईं।

सुभद्रा ने फिर रमेन्द्र को सम्बोधित किया, "बहन जी, मुझे अपनी मौत का कोई दुख नही, मैं तो बडी देर से मरने का कोई-न-कोई बहाना ढूँढती थी। यही कारण है कि मुझे अपने बयान मे जरा-सी भी हिचक नहीं हुई। कभी की मर चुकी होती, पर इसी के मोह ने मुझे मरने नहीं दिया। सोचती हूँ कि मैं तो अपने पापो की सजा भुगत रही हूँ, पर इस बेचारे मासूम ने कौन-सा पाप किया है कि मेरे मरने के बाद यह दर-दर की ठोकरें खाने के लिए रह जाएगा। अभी थोडी देर हुई है कि मैंने एक अनाथालय के मैनेजर को बुलवाया था। मेरी इच्छा है कि और नही तो अनाथालय के टुकडो पर ही पल जाय। किसी प्रकार जीवित तो रहे!" कहते-कहते सुभद्रा रो पड़ी। उसका हृदय जैसे सीना चीरकर निकला आ रहा था—कदाचित् वात्सल्य की प्रबलता से।

"ऐसे मत कह, बहन!" रमेन्द्र ने उसके सिर को बाँहों में घेर-

चूम कहा, "अनाथालय अनाथों के लिए होते हैं, मेरे किशोर के लिए नहीं ।" और उसने किशोर का एक बार फिर चूम लिया ।

अनायास जैसे दूसरे की भावना भी परछाईं बीत गई हो, सुभद्रा ने रमेन्द्र की ओर देखा, पर बोली कुछ नहीं । रमेन्द्र कहती गई—"भगवान का कोई विधान नहीं बदलता । जो होना था, हो गया । मेरी भाभी गई, और साथ ही इस मुन्ने के चेहरे में मालूम लगता है कि मेरा भाई है । [illegible] ऐसा अनाथालय में जाए, यह कभी नहीं हो सकता ।"

"बहन जी," सहसा रमेन्द्र के पाँवों पर गिरती हुई सुभद्रा रोकर बोली, "ईश्वर आपको इस नेकी का फल दे ! बस, अब मुझे कोई चिन्ता नहीं । मैं अब खुशी से फाँसी की रस्सी अपने गले में अपने हाथों से डाल सकूँगी । पर फाँसी लगने में न जाने कितनी देर…" और बोलते-बोलते रुक गई ।

प्रसन्नता और विषाद छा गया रमेन्द्र पर । कमरे के वातावरण में इस समय अनेक वस्तुएँ मिली हुई थीं—आह्लाद, उमंग, दुख और अपमान । रमेन्द्र ने एक बार फिर किशोर को उठाकर अपने वक्ष से भींच लिया और चिरकाल से खोयी हुई वस्तु की भाँति बार-बार गहरे ध्यान से उसके नाक-नक्श को देखती और देख-देखकर चूमती । अपने पाँवों से सुभद्रा का सिर उठाकर, बिना कुछ कहे उसने उसे फिर से कुर्सी पर बिठा दिया । सुभद्रा सम्भवतः अपने हृदय के उद्‌गार अभी समाप्त नहीं कर पाई थी । वह फिर बोली, "बहन जी, आप सच में कोई देवी बनकर मेरे लिए प्रकट हुई हैं । पहले आपने मेरे भाई की बाँह पकड़ी थी, अब इस अनाथ बच्चे को सहारा देने आई हैं । ईश्वर आपका दोनों लोक में भला करे, बहन जी !"

"अनाथ न कह मेरे भाई को ।" रमेन्द्र बच्चे को चूमकर बोला, "यह अपने पिता की जायदाद का वारिस बनेगा । तू इसे आशीष दे कि जो कालिमा इसके पिता ने अपने और तुम्हारे परिवारों के माथे पर लगाई है, यह उसे धोने में सफल हो ।"

आँसुओं-भरे गले से सुभद्रा बोली, "मेरे जलते कलेजे को ठण्डक

पहुँचाने वाली, ईश्वर तेरा कलेजा ठण्डा रखे ! बस, अब मुझे कोई चिन्ता नहीं। अब मैं बड़े आराम और सन्तोष से मर सकूँगी।"

"मरें तेरे दुश्मन बहन, मैं हाई कोर्ट में अपील···"

"यह न कहो, बहन जी ! अपील के लिए मैंने न कोई गुन्जाइश छोड़ी है, न ही इसका कोई लाभ होगा। स्वीकार किये जुर्म की दशा में कोई भी अपील कुछ नहीं सँवार सकती।"

"अगर अपील की गुन्जाइश नहीं होगी, तो रहम की तो है ?"

इसी समय सिपाही ने दरवाजे में से आ सूरत दिखाई। दोनों समझ गईं कि मुलाकात का समय हो चुका है। रमेन्द्र सिपाही की ओर देखकर नम्रता से बोली, "केवल पाँच मिनट और, मेरे भैया !"

"अच्छा, बीबी जी !" कहकर सिपाही एक ओर हट गया।

"बहन जी," शीघ्रातिशीघ्र बातचीत को समाप्त करने के विचार से सुभद्रा बोली, "मुन्ने को आप साथ ले जाएँ। दिल तो मेरा यही चाहता है कि मरने की घड़ी तक मेरी आँखों के सामने रहे, पर बेचारा यहाँ तंग आ गया है। हर वक्त 'घर चलो, घर चलो' की रट लगाए रहता है। साथ ही एक काम और भी करना बहन जी, जन्नत होटल के कमरा न० १९ में मेरा कुछ सामान पड़ा है। मेरे सूटकेस में सैंट्रल बैंक की पास बुक और चैक-बुक है। मैं जेल द्वारा एक चिट्ठी होटल वालों के नाम और दूसरी बैंक की ओर भिजवा दूँगी। वह सामान मँगवा लेना और बैंक में जो कुछ जमा है, उसे निकलवाकर जैसे चाहो प्रयोग कर लेना।" और उसने किशोर को गोद में लेकर कहा, "गोरी ! जा मुन्ना, अपनी बहन जी के साथ घर जा, मैं भी थोड़ी देर में तेरे पास आ रही हूँ।"

बालक पहले तो कुछ झिझका, पर घर का नाम सुनकर वह तैयार हो गया। जैसे ही रमेन्द्र ने प्यार से गोद में लेकर एक बार फिर उसे चूमा कि पूरे तौर से प्रसन्न हो उठा।

इसके पश्चात् सुभद्रा ने सीने से लगाकर कहा—"उदास न होना, मुन्ने ! मैं जल्दी आऊँगी, तब तक अपनी बहन जी से खेलना। यह तुझे बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें खिलाया करेंगी, अच्छा !"

मुन्ना बोल उठा, "पेछतरी भी ? औ आइछ क्लीम भी, बीबी !"

"बेदर्दी भी," आँसुओं को छिपाकर पोंछते हुए सुभद्रा बोली, "आदमखोर भी, साथ ही और [illegible] भी थे। और देख, बहन जी को तंग मत करना, अच्छा! जा मेरे लाल, जा तेरी बड़ी-बड़ी उम्र…" और इससे आगे कुछ कहने से पूर्व ही सुभद्रा ने मुँह दूसरी ओर करके दुपट्टे से अपनी आँख को पोंछ लिया।

सहसा रमेन्द्र को कुछ और याद हो आया। उसने फिर से उसी प्रसंग को छेड़ते हुए कहा—"तुम '[illegible]' नाम या किसी 'बिहारी' नाम के आदमी का ज़िक्र कर रही थीं, वह कौन था?"

मुन्ने की ओर से ध्यान हटाकर सुभद्रा बोली—"उसकी कहानी बहुत लम्बी है, बहन जी! सच पूछें तो इसी हत्यारे ने सबसे पहले मुझे सर्वनाश की राह पर ला पटका था। यह तो आप जान ही चुकी हैं कि हम माँ-बेटी को क्यों भागना पड़ा; और यह भी जान चुकी हैं कि दिल्ली आकर हम लोग 'रघुवरपुरा' में रहने लगे थे, जहाँ रहते हुए यह अभागा लड़का पैदा हुआ। इधर यह पैदा हुआ, उधर मेरी माँ ने खाट पकड़ी और थोड़े ही दिनों बाद वह चल बसी। घर में तब इतना भी नहीं था कि माँ का दाह-संस्कार भी हो पाता। मुहल्ले वालों ने ही काठ-कफ़न जुटाया।…

"पहले ही मैं कुछ कम दुखी नहीं थी। माँ का सहारा छिन जाने से बचा-खुचा धीरज भी जाता रहा। न कोई आगे, न कोई पीछे। मर जाने की इच्छा हुई, पर इसी कलमुँहे मुन्ने के मोह ने नहीं मरने दिया।…

"इसी बीच वह शैतान बिहारी कहीं से आ टपका और मुझे 'धर्म की बहन' कहकर हर तरह से मेरी मदद करने लगा। मेरी अक्ल पर पर्दा पड़ गया जो मैं उसे 'धर्म भाई' ही नहीं, बल्कि धर्म का अवतार मानने लगी। अन्त में उसका असल रूप तब प्रकट हुआ जब अपने जाल में वह मुझे एक ऐसी जगह पर ले गया जहाँ जाकर मेरे चारों दामन गन्दगी में सनकर रह गए।"

"ऐसा!" रमेन्द्र मानो धधक उठी—"सो कैसे?"

"अब क्या बताऊं, बहन जी! बिहारी असल में औरतों की बिक्री का धंधा करता था। उसका यही पेशा था कि जहाँ पर कोई

मेरे जैसी मासूम औरत देखी कि उसके साथ बहन-भाई का रिश्ता कायम कर लिया और मौका पाते ही उन वेश्याओं के हाथ में जाकर बेच दिया। आप सोचती होंगी, बहन जी, कि मैंने वहाँ जाकर कैसे इस पेशे को स्वीकार कर लिया? उन्होंने ऐसा हथियार चलाया जिसकी चोट सहने की ताकत मुझमें नहीं थी—मैंने घुटने टेक दिये और…"

बीच में ही रमेन्द्र बोल उठी—"वह कौन-सा हथियार था, जरा सुनूँ तो!"

ठंडी साँस भरकर सुभद्रा ने मुन्ने की ओर संकेत किया—"इसी चार बरस के बच्चे के मोह में पड़कर मुझे उनके आगे हथियार डालने पड़े, बहन जी!"

"क्या मतलब?"

"मतलब यह कि उस कुटनी ने जिसे 'खाला मुमताज' कहकर पुकारते हैं और जिसने मुझे खरीदा था, चुपके से इसे ले-जाकर कहीं छिपा दिया और बहाना यह लगाया कि लड़के को डाकू उठा ले गए हैं। मुझे उल्लू बना रखा था। तब मैंने रो-रोकर उससे विनय की कि चाहे जैसे भी बन पड़े, मेरे मुन्ने को ढूँढने में मेरी सहायता करे। कुछ दिनों बाद उसने एक चिट्ठी मुझे दिखाई जिसके बारे में उसने बताया था कि बहुत दौड़-धूप करने पर उसने डाकुओं का पता लगाया है और उन्होंने ही यह चिट्ठी भेजी है।"

"चिट्ठी में क्या लिखा था?" रमेन्द्र के पूछने पर सुभद्रा ने कहा—"लिखा था—आठ दिन के भीतर अगर पाँच हजार रुपए भेज दें तो लड़के को लौटा दिया जाएगा, नहीं तो नौवें दिन इसे खत्म कर दिया जाएगा।"

सिसकारी भरकर रमेन्द्र बोली—"तब?"

"तब और मैं क्या करती, बहन जी! झख मारकर मुझे खाला मुमताज की ही सलाह पर चलना पड़ा।"

"क्या थी वह सलाह?"

"यही कि पाँच हजार रुपए में उसके पास मुझे गिरवी रहना होगा। इस शर्त को मानने पर दूसरे ही दिन मुन्ना मुझे मिल गया।"

"हे भगवान !" रमेन्द्र मुंह और निःश्वास छोड़ती हुई बोली—"और इसके बाद ?"

सुभद्रा का उत्तर सिसकियों में मिला, रुंधे—"बस और कुछ मत पूछिये, बहन जी ! भगवान के लिए और कुछ मत पूछिये। आपके पाँव पड़ती हूँ।" और सचमुच ही सुभद्रा ने रमेन्द्र के दोनों पैर पकड़ लिये।

थोड़ी देर के लिए कमरे में सन्नाटा छाया रहा, फिर रमेन्द्र के इन शब्दों ने तोड़ा—"नहीं पूछूँगी, सुभद्रा, कुछ नहीं पूछूँगी। केवल एक बात के बारे में पूछना चाहती हूँ।"

"कहिये।"

"जिस सेठ के खून का मुकद्दमा तुम पर चल रहा है, क्या उसके बारे में कुछ बताओगी ?"

"सब बताती हूँ।" कहने के बाद सुभद्रा ने आदि से अन्त तक उस हत्या का सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

इधर सुभद्रा का वृत्तान्त समाप्त हुआ, उधर से सिपाही फिर दिखलाई दिया। उसका आना इस बात का सूचक था कि मुलाकात का समय अब अधिक नहीं मिलेगा।

सुभद्रा को सिसकते देखकर रमेन्द्र की आँखें भी गंगा-यमुना बहाने लगीं और इसी अश्रु-प्रवाह की बाढ़ में इन दोनों को अलग होना पड़ा। लौटते समय मुन्ना को रमेन्द्र ने कन्धे से सटाया हुआ था। वह प्राप्त होने वाले अच्छे-अच्छे खिलौनों की खुशी में जिनका प्रलोभन उसे दिया गया था, अपनी माँ को भूल-सा गया जान पड़ता था।

जेल से निकलकर रमेन्द्र कितनी ही देर तक बाजारों में घूम-घूमकर मुन्ने के दिल-बहलाव का सामान और उसके लिए रेडीमेड कपड़े खरीदती रही। वहाँ से जब लौटी तो मुन्ना इन चीजों से लदा हुआ था।

रतना ने जब यह सब देखा तो देखते ही रह गया ; उसे कुछ पूछते नहीं बना। वह यदि पूछना चाहता था तो उसी सुभद्रा की ... बात के सम्बन्ध में, जिसके प्रति घृणा से उसके शरीर का रोआँ-

रोआँ जल रहा था।

कोठी पहुँचकर रमेन्द्र ने सबसे पहले मुन्ने को नहला-धुलाकर नए कपड़े पहनाए और उसकी आँखों में काजल लगाया।

अब मुन्ने की छवि देखते ही बनती थी। नए पहरावे में जब वह ठिपक-ठिपक चाल से इधर-उधर चल-फिर रहा था तो रमेन्द्र उसे देख-देखकर अघाती नहीं थी। मानो आज उसे नव-निधियों की प्राप्ति हो गई हो। रतना—जो इस समय भीतर-ही-भीतर गले जा रहा था—उसकी हालत सुधारना भी उसका कर्तव्य है, इस ओर से भी रमेन्द्र मानो असावधान हो गई थी मुन्ने के फेर में पड़कर।

२९

"रतने ! तुझे क्या हो गया रे ? भला-चंगा था तू। आखिर बात क्या है ? जब-जब पूछती हूँ, बस एक ही जवाब—कुछ नहीं बीबी जी, कुछ नहीं बीबी जी। मैं कहती हूँ कहीं जान पर खेलने को तो उतारू नहीं हो गया तू ? सच-सच बताना होगा आज तुझे, नहीं तो···।"

आवेश में आकर कितना ही कुछ बोलती चली गई रमेन्द्र। और उधर सुनने वाले की यह दशा थी कि हाड-मास का शरीर होते हुए भी रतना इस समय पाषाण-मूर्ति दिखाई दे रहा था।

दोपहर ढल रही थी। किशोर खेलते-खेलते सो गया था। रमेन्द्र जब से सुभद्रा से मुलाकात करके लौटी है, तभी से उसके मन में उथल-पुथल मच रही है—अभागिन सुभद्रा का क्या होगा ? उसके लड़के का भविष्य कैसा रहेगा ? माता जी की बढ़ी जा रही बीमारी और पिता जी के इस पैशाची आचरण का परिणाम ?

और इन सब समस्याओं से बढ़कर रमेन्द्र का रक्त शोषण किये जा रही थी रतना की चिन्ता। उसे न जाने क्या हो गया था कि

रतना भी वैसी, जैसी हारी बैठी है। न खाने की सुध, न पहनने की। मन में [illegible] के साथ में भटकर काटने लग जाता। जितना भी रमेन्द्र उसे समझाने का प्रयत्न करती, उसी क्रम से उसकी दशा सुधरने के स्थान पर बिगड़ती ही चली जाती। अब रमेन्द्र करे तो क्या करे! यदि इस ओर निराशा के वातावरण में उसके लिए आशा बंधाने वाली कोई चीज थी तो वह था नन्हे शिशु का अस्तित्व। जितनी देर तक मुन्ना उसकी आँखों के आगे रहता, सब प्रकार की चिन्ताओं से उसका मन छुटा रहता। पर मुन्ना कोई आठों-याम तो था नहीं, जिसे चौबीसों घंटे वह गले से बांधे रहती।

आज रमेन्द्र कुछ अधिक ही खिन्नचित्त हो उठी थी। उसका एक विशेष कारण यह भी था कि दिल्ली में तो उन्हें डेरा डाले नहीं बैठे रहना है; शीघ्रातिशीघ्र उन्हें लौटना है, जबकि घर से पत्र-पर-पत्र चले आ रहे थे। उस पर मुसीबत यह कि लौटने के बारे में जब भी वह रतना से बात चलाती तो वह 'मौनी महाराज' बना रहता। रमेन्द्र को इस बात का भी भय था कि यह युवक कहीं कुछ और न कर बैठे।

यों रमेन्द्र ऐसी नासमझ भी तो नहीं थी जो रतना की मनःस्थिति को न जान पाई हो। रतना के स्थान पर चाहे कोई भी होता, इन परिस्थितियों में पड़कर उसकी दशा भी प्रायः रतना जैसी ही होती। पर रमेन्द्र के लिए इतना ही सोचकर संतोष कर लेना तो सम्भव नहीं था। रतना उसके लिए बड़े महत्व की वस्तु था, अथवा यूं कहिये कि रमेन्द्र के पिता ने ही इस अभागे परिवार को नष्ट-भ्रष्ट किया है और रमेन्द्र चाहती है अपनी पिता द्वारा किये हुए महापाप का प्रायश्चित करना। रतना के परिवार में से जितना-कुछ चला गया, उसे लौटा लाना भले ही रमेन्द्र के वस में न हो, पर जितना-कुछ बच गया है उसकी सुरक्षा का दायित्व तो उसी पर है। और इन परिस्थितियों में क्या वह रतना को उसी हालत में छोड़ दे? उसके लिए इतनी निष्ठुर बन जाना सम्भव न था।

यही सब सोचकर, तथा अपने मन में कोई विशेष निर्णय कर

मेरे के पश्चात् मात्र रमेन्द्र ने रतना को आड़े हाथों लेना आरम्भ किया।

"नहीं तो···नहीं तो, बीबी जी, क्या करेगी ? क्या आत्महत्या ? नहीं तो क्या मुझे छोड़कर चली जाएगी ?

रमेन्द्र के अन्तिम वाक्यांश 'नहीं तो' ने रतना को चौंका दिया और उसकी मौन समाधि भंग हो गई। थोड़ा सम्भलकर उसने दम साध लिया और कुछ कठिनाई से, कुछ रुखाई से बोला—

"नाराज मत होइए, बीबी जी ! मेरी हालत अच्छी नहीं है।"

"सो तो देख ही रही हूँ। पर मैं पूछती हूँ किसी की नाव अगर भँवर में फँस जाए तो उसे पूरी शक्ति से डांड चलाना चाहिए या कोरी हारकर बैठ जाना चाहिए ?"

"ठीक कहती हैं आप। ऐसी हालत रहने से तो नाव डूबेगी ही।"

"तो फिर तुम क्यों अपनी नाव डुबोने पर उतारू हो ?"

"मेरी नाव ?" रतना ने ठण्डी साँस भरी—"मेरी नाव··· बीबी जी, वह तो डूब चुकी और बहुत पहले से।"

"पागल !" रमेन्द्र उसके कन्धे पर हल्का-सा टहोका लगाकर स्नेह-युक्त स्वर में बोली—"कौन कहता है कि तेरी नाव डूब चुकी है ? दूर कर इस बेकार के ख्याल को दिल से ! अच्छा, अगर तेरी ही बात सच है तो इतना और बता कि इस नाव को डुबोया किसने ?"

"मेरी बदकिस्मती ने, बीबी जी, और किसने ?"

"तेरी बदकिस्मती ने नहीं, बल्कि तेरे बाप ने।"

रतना को मौन पाकर रमेन्द्र ने आगे कहना आरम्भ किया—

"और सुन ! रमेन्द्र अगर अपने बाप की बेटी है तो वह इसका प्रायश्चित करके उस कसक को धोने की भरसक कोशिश करेगी।"

"प्रायश्चित आप करेंगी, यह तो मैं जानता हूँ, बीबी जी, पर मेरे लिए यह जो इतनी परेशानियाँ उठा रही हैं आप, क्या ये सब प्रायश्चित से कम हैं ?"

"तुम भूलते हो, रतना ! मेरे पिता का पाप इतना छोटा नहीं है, जिसका प्रायश्चित इतने-भर से ही हो जाएगा। यह तो उसका आरम्भ है।"

लेने के पश्चात् आज रमेन्द्र ने रतना को आड़े हाथों लेना आरम्भ किया।

'नही तो'''नही तो, बीबी जी, क्या करेंगी ? क्या आत्महत्या ? नही तो क्या मुझे छोडकर चली जाएँगी ?

रमेन्द्र के अन्तिम वाक्यांश 'नही तो' ने रतना को चौंका दिया और उसकी मौन समाधि भग हो गई। थोडा खखारकर उसने गला साफ किया और कुछ कठिनाई से, कुछ रुखाई से बोला—

"नाराज मत होइये, बीबी जी ! मेरी हालत अच्छी नही है।"

"सो तो देख ही रही हूँ। पर मैं पूछती हूँ किसी की नाव अगर भँवर में फँस जाए तो उसे पूरी शक्ति से डाड चलाना चाहिए या ऊँधी डालकर बैठ जाना चाहिए ?"

"ठीक कहती हैं आप। ऊँधी डाले रहने से तो नाव डूबेगी ही।"

"तो फिर तुम क्यों अपनी नाव डुबोने पर उतारू हो ?"

"मेरी नाव ?" रतना ने ठण्डी साँस भरी—"मेरी नाव''' बीबी जी, वह तो डूब चुकी और बहुत पहले से।"

"पागल !" रमेन्द्र उसके कन्धे पर हल्का-सा टहोका लगाकर स्नेह-युक्त स्वर में बोली—"कौन कहता है कि तेरी नाव डूब चुकी है ? दूर कर इस बेकार के खयाल को दिल से ! अच्छा, अगर तेरी ही बात सच है तो इतना और बता कि इस नाव को डुबोया किसने ?"

"मेरी बदकिस्मती ने, बीबी जी, और किसने ?"

"तेरी बदकिस्मती ने नहीं, बल्कि मेरे बाप ने।'

रतना को मौन पाकर रमेन्द्र ने आगे कहना आरम्भ किया—

"और सुन ! रमेन्द्र अगर अपने बाप की बेटी है तो वह इसका प्रायश्चित करके उस कलक को धोने की भरसक कोशिश करेगी।"

"प्रायश्चित आप करेंगी, यह तो मैं जानता हूँ, बीबी जी, पर मेरे लिए यह जो इतनी परेशानियाँ उठा रही हैं आप, क्या ये सब प्रायश्चित से कम हैं ?"

"तुम भूलते हो, रतना ! मेरे पिता का पाप इतना छोटा नहीं है, जिसका प्रायश्चित इतने-भर से ही हो जाएगा। यह तो उसका आरम्भ है।"

रतना सहमा-सा होकर रमेन्द्र की ओर ताक रहा था। मानो उस दृष्टि द्वारा उससे पूछ रहा हो—'और यह प्रायश्चित्त क्या होगा?' उधर रमेन्द्र ने सम्भवतः उसके उस मूक प्रश्न को भाँप लिया; बोली—"तुम पूछना चाहते हो कि उस प्रायश्चित्त की रूपरेखा क्या होगी? यही न?"

"जी हाँ।"

"पर इसके बारे में अभी मैं कुछ नहीं बताऊँगी।"

"तो कब बताओगी?"

"समय आने पर।"

"कब आएगा वह समय?"

"जब तुम पूरे तौर से उस सदमे को भूल जाओगे।"

"सच तो, भाभी जी, न तो मन मेरा छूटेगा न सदमा जायेगा। मेरा सदमा तो श्मशान में ही जाकर मिटेगा।"

"पागल कहीं का!" पसलों की ओर एक और टहोका लगाते हुए रमेन्द्र बोली—"सुन मेरी बात!"

रतना गंभीर होकर सुनने लगा।

"मेरे पास एक दवा है, जिसके प्रयोग से दिल का गहरे-से-गहरा घाव भी मिट सकता है।"

सुनकर रतना चौंक उठा—"क्या कहा? ऐसी दवा है आपके पास?"

"हाँ, है।"

"तो फिर सबसे पहले वही दीजिये मुझे।"

"अभी नहीं।"

"तो कब?"

"अमृतसर जाकर, क्योंकि तेरी दवा वहीं पर है।"

"सच!"

"और नहीं तो क्या झूठ?"

रतना को किसी गहन विचार में खोया पाकर रमेन्द्र बोली—

"क्या सोच रहे हो?"

रतना के होंठों पर क्षीण-सी मुस्कान फैल गई। देखते-ही-

देखते उसमें कुछ अनोखा-सा परिवर्तन हो आया, मानो क्षणभर में उसका कायाकल्प हो गया हो, मानो किसी प्रकार की हार्दिक पीड़ा उसे छू तक न गई हो।

प्रसन्नता के मारे उछल ही तो पड़ा रतना! और इस प्रसन्नता को छिपाने का निरर्थक प्रयत्न करते हुए बोला—"आप···आप तो अन्तर्यामिनी हैं, बीबी जी!"

"क्या मतलब?"

"मतलब यह कि···कि···"

"रुक क्यों गया? हाँ, क्या कहने लगा था? कौन-सी अन्तर्-यामिता देखी तुमने मेरी?"

"सो अभी नहीं बताऊँगा।"

"तो कब बताएगा?"

"जब आप वह दवा मुझे प्रदान करेंगी।"

"अच्छा यूँ ही सही। तो अब तुम्हें विश्वास है न कि मेरी दवा तुम्हारे लिए रामबाण सिद्ध होगी?"

"क्यों न होगी? जिस चीज़ का ज़िक्र सुनने पर ही मेरे दिल का आधा घाव भर गया है, जिसका प्रेम पहले से ही मेरे रोएँ-रोएँ में बसा हुआ है, उसकी प्राप्ति से तो···" आह्लाद और उमगों के बोझ-तले दबकर रतना अपने वाक्य को पूरा नहीं कर पाया। उधर रमेन्द्र का हृदय किसी भावी प्राप्ति की आशा में छलक उठा। वह बोली—

"तो अब तुम्हारी हालत ठीक है न?"

"ठीक से भी बढ़कर, बीबी जी!"

"प्रभु को धन्यवाद है!"

देखते उसमें कुछ अनोखा-सा परिवर्तन हो आया, मानो क्षणभर में उसका कायाकल्प हो गया हो, मानो किसी प्रकार की हार्दिक पीड़ा उसे छू तक न गई हो।

प्रसन्नता के मारे उछल ही तो पड़ा रतना! और इस प्रसन्नता को छिपाने का निरर्थक प्रयत्न करते हुए बोला—"आप···आप तो अन्तर्यामिनी हैं, बीबी जी!"

"क्या मतलब?"

"मतलब यह कि···कि···"

"रुक क्यों गया? हाँ, क्या कहने लगा था? कौन-सी अन्तर्-यामिता देखी तुमने मेरी?"

"सो अभी नहीं बताऊँगा।"

"तो कब बताएगा?"

"जब आप वह दवा मुझे प्रदान करेंगी।"

"अच्छा यूँ ही सही। तो अब तुम्हें विश्वास है न कि मेरी दवा तुम्हारे लिए रामबाण सिद्ध होगी?"

"क्यों न होगी? जिस चीज का जिक्र सुनने पर ही मेरे दिल का आधा घाव भर गया है, जिसका प्रेम पहले से ही मेरे रोएँ-रोएँ में बसा हुआ है, उसकी प्राप्ति से तो···" आह्लाद और उमंगों के बोझ-तले दबकर रतना अपने वाक्य को पूरा नहीं कर पाया। उधर रमेन्द्र का हृदय किसी भावी प्राप्ति की आशा में छलक उठा। वह बोली—

"तो अब तुम्हारी हालत ठीक है न?"

"ठीक से भी बढ़कर, बीबी जी!"

"प्रभु को धन्यवाद है!"

रमेन्द्र रिक्शा में बैठी जेल की ओर जा रही थी और उसे अपना मन हल्का-फुल्का जान पड़ रहा था—हल्का-फुल्का और प्रोत्साहित। मानो वह बहुत दिनों तक किसी घने और ऊबड़-खाबड़ जंगल में भटकते रहने के पश्चात् उसे मार्ग-दर्शन हो गया हो, उसकी जन्म-जन्मान्तर की साधना सफल हो गई हो, जैसे अपने पिता द्वारा किये पाप का प्रायश्चित्त कैसे कर पायेगी, इस पहेली का समाधान उसने पा लिया हो।

कई दिनों से वह सोच रही थी कि क्या ऐसा कोई ढंग है जिसकी सहायता से वह रतना के दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदल सके? ऐसा ढंग जिससे रतना यदि अपने अतीत और वर्तमान को खो चुका है तो कम-से-कम उसके भविष्य को तो सुरक्षित कर पाए! कदाचित् इसी अभिप्राय से वह एक बार रतना से बातें करने की इच्छुक थी। वह अपना दिल खोलकर रतना को दिखलाना एवं रतना का दिल देखना चाहती थी। पर रतना के हर समय गुमसुम बने रहने से वह इसमें सफल नहीं हो पा रही थी।

और अन्तिम यत्न के रूप में जब उसने रतना के मौन का ताला तोड़ ही डाला तो उसने पाया कि जिन वलवलों ने इन दिनों उसके हृदय को भर रखा है, रतना का हृदय भी उनसे अछूता नहीं है। वह यदि रतना को चाहने लगी है तो रतना भी इस चाहत से अछूता नहीं है। और यही था रमेन्द्र की सफलता का कारण।

भले ही बातचीत कुछ अस्पष्टरूपेण रही थी पर वह तो होना ही था। रमेन्द्र यह भी तो जानती थी कि प्रेम प्रकट करने के समय मनुष्य की जुबान गूँगी हो जाया करती है। रमेन्द्र ने इतने को ही अ... समझा अथवा इतना ही उसे सन्तुष्ट करने के लिए पर्याप्त था
रिक्शा जेल के निकट जा पहुँचा, पर रमेन्द्र की विचार-शृङ्खला ... टूटी। वह सोच रही थी—

'...रतना में पौरुष है, जवानी है। समझ-बूझ की भी उसमें ...ी नहीं है। राजकुमारों जैसा सुन्दर और सलोना शरीर है उसका।

कितना खिलता है उस पर सादा-स्वच्छ पहरावा। अगर उसके शरीर पर एक कीमती सूट हो, धुले-सँवरे हो उसके अग-प्रत्यग, फिर तो ...फिर तो सोने मे सुगन्ध ही भर जाए। कमी जो रह जाएगी तो इसी बात की कि रतना अधिक पढ़ा नही है और मैं पढी-लिखी। पर इस छोटी-सी असमानता से क्या फर्क पड़ता है! कितनी तीक्ष्ण बुद्धि है उसकी! अगर यत्न किया जाए तो थोडे ही दिनो में वह पढ़ा-लिखा अप-टु-डेट व्यक्ति बन सकता है। मुझे प्रायश्चित भी तो करना है और इतने बडे प्रायश्चित के लिए कुछ-न-कुछ त्याग तो मुझे...'

झटके से रिक्शा रुका और इसके साथ ही रमेन्द्र की विचार-धारा कटकर रह गई।

वह रिक्शा से उतरी, भाड़ा चुकाया और द्रुतगति से गेट की ओर बढ़ गई।

जेलर अधेड उम्र का एक मुसलमान सज्जन था। या तो वह स्वभाव से ही नम्र और भद्र था, या सम्भवतः रमेन्द्र द्वारा उसकी और बँदी (सुभद्रा) की वार्ता सुन लेने से रमेन्द्र के साथ इतना अच्छा बरताव करने लगा था।

जैसे ही उन महाशय ने रमेन्द्र को आते देखा कि दूसरे सब कामो को बीच में ही छोड़कर उसकी ओर लपके। उसे आदरपूर्वक अपने आफिस मे ले गए और फिर मेज के आमने-सामने दोनो बैठ गए।

"क्षमा करेंगे बुजुर्गवार, मैं सुभद्रा से मुलाकात करने आई हूँ।"

"वह तो जानता हूँ।" जेलर कुछ बुझे-से स्वर में बोले—"मुझे यकीन था कि आप आएँगी। सच पूछिये तो मैं आपके ही इन्तजार में था। आपने अपना पता-ठिकाना भी तो नही बताया था, वर्ना आपको बुलवा ही लेता।"

"शुक्रिया!" आभार प्रकट करते हुए रमेन्द्र बोली—"तो क्या सुभद्रा को जल्दी किसी दूसरी ही जगह से जाया जा रहा है?"

"जी नही, वह..." और बोलते-बोलते वे कुछ सकपका गए। जैसे इसके आगे जो वाक्यांश वे कहने वाले थे, वह उनके गले में फँस गया हो।

सकती। सो इसके लिए मुझको माफी देंगी।

चिट्ठी में कोई खास बात लिखने वाली नहीं है, भैण जी! सिरफ ऐसे ही कुछ बातें आपके साथ करना चाहती हूँ।

आप जानती हैं कि मेरे जैसी ओछी और बुरी जनानी (औरत) को अब दुनिया में रहकर क्या करना है! सच कहती हूँ, भैण जी! मैं तो कभी की मर गई होती अगर मुन्ने का मोह न होता। कई बार मरना चाहा पर इसी नामुराद ने मरने न दिया।

उस दिन मैंने तुमको बताया था न कि इसी मनहूस लड़के को बचाने के वास्ते मुझे वेश्या तक बनना पड़ा! इधर जब मुकद्दमा चलने लगा, इसके बीच भी दो-तीन दफे मैंने मरने का इरादा बनाया। पर जैसे ही खियाल आता कि मेरे पीछे इस बेचारे का क्या होगा, तो मुझे इरादा बदल देना पड़ा। यही सोचा करती थी कि अगर कोई दयावान इसे गोदी ले लेता तो मैं आसानी से मर सकती। पर कहाँ पाती ऐसे दयावान को? आखिर राम जी ने मेरी पुकार सुन ही ली और आपको भेज दिया।

जिस दिन आप मुन्ने को लेकर गईं, मेरी छाती पर से बोझ उतर गया और मैंने आत्महत्या करने की बात पक्की कर ली। अफीम यहाँ जेल में आम मिलती है, अगर कुछ जास्ती पैसे खरच किये जाएँ। और मैंने वही किया।

तो मेरी अच्छी भैण जी, अब विदा चाहती हूँ। भगवान करे यह चिट्ठी आपको मिल जाए।

अन्त में आपसे ये ही भिखिया माँगती हूँ भैण जी, कि मेरे मुन्ने को सँभालकर रखना। बड़ा पिआरा बच्चा है। आपका मन बहलाया करेगा। अगर मेरे बारे में पूछे तो कह दिया करना कि 'काका, तेरी माँ तेरे वास्ते अच्छी-अच्छी चीजें लेने गई है। जल्दी लौट आयेगी।

कितने अचरज की बात है, भैण जी! कुछ भी समझ

रमेन्द्र कुछ आशंकित-से स्वर में बोली—"क्या फरमाया जनाब ? क्या सुभद्रा की [illegible] हो गई ?"

कुछ कठिनाई से—मानो शब्द को खींचकर गले से निकाल रहे हों, वे बोले—

"सुभद्रा ने...उस बदनसीब लड़की ने खुदकुशी कर ली।"

"आ...आ...एँ ! रमेन्द्र को मानो किसी ने धक्का देकर कुर्सी से नीचे गिरा दिया हो—"खुदकुशी कर ली उसने ?"

"जी हाँ।"

"कब ?"

"परसों रात। कल तक उसकी लाश को रखे रहे, और जब कोई उसका वारिस नहीं आया तो कल जेल के श्मशान में लाश को जला दिया गया।"

"हे भगवा...आ...न !" हाथ मलती रह गई रमेन्द्र। उसकी आँखें डबडबा आईं—"अभागिन, यह तूने क्या कर डाला !"

इधर रमेन्द्र प्रलाप कर रही थी, उधर जेलर ने मेज की दराज में से एक भारी-भरकम खुला लिफाफा निकालकर उसके आगे बढ़ा दिया, जिसे थामते हुए रमेन्द्र ने पूछा—"यह क्या है जी ?"

"सुभद्रा की चिट्ठी है, जो वह आपके लिए लिखकर छोड़ गई थी।" कहते हुए जेलर महाशय उठकर बाहर चले गए—कदाचित रमेन्द्र को एकान्त में पत्र पढ़ने का अवसर देने के अभिप्राय से।

काँपकँपाते हाथों से रमेन्द्र ने लिफाफे में से मुट्ठीभर छोटे-बड़े कागजों का पुलिन्दा-सा निकाला। लिखावट भद्दी और अक्षर मोटे-मोटे थे। जगह-जगह पर शब्दों-वाक्यों पर लकीरें फेरकर काटा और फिर से लिखा गया होने से लिखावट और भी कचरा-सी बन गई थी। अशुद्धियों की भरमार ने शब्दों-वाक्यों को विकलांग-सा बना दिया था। स्पेलिंग भी गलत-सलत थे।

'प्रिय भैण जी,

बहुत दिल चाहता था कि मरने से पहले एक बार फिर आपके दरशन करां। साथ ही मुन्ने को देखने को भी बड़ा दिल करता था। पर अब इसकी 'उडीक' नहीं कर

सकती। सो इसके लिए मुझको माफी देगी।

चिट्ठी में कोई खास बात लिखने वाली नही है, भैण जी! सिरफ ऐसे ही कुछ बाते आपके साथ करना चाहती हूँ।

आप जानती हैं कि मेरे जैसी ओछी और बुरी जनानी (औरत) को अब दुनिया में रहकर क्या करना है! सच कहती हूँ, भैण जी! मैं तो कभी की मर गई होती अगर मुन्ने का मोह न होता। कई बार मरना चाहा पर इसी नामुराद ने मरने न दिया।

उस दिन मैंने तुमको बताया था न कि इसी मनहूस लड़के को बचाने के वास्ते मुझे वेश्या तक बनना पड़ा! इधर जब मुकद्दमा चलने लगा, इसके बीच भी दो-तीन दफे मैंने मरने का इरादा बनाया। पर जैसे ही खिआल आता कि मेरे पीछे इस बेचारे का क्या होगा, तो मुझे इरादा बदल देना पड़ा। यही सोचा करती थी कि अगर कोई दयावान इसे गोदी ले लेता तो मैं आसानी से मर सकती। पर कहाँ पाती ऐसे दयावान को? आखिर राम जी ने मेरी पुकार सुन ही ली और आपको भेज दिया।

जिस दिन आप मुन्ने को लेकर गईं, मेरी छाती पर से बोझ उतर गया और मैंने आत्महत्या करने की बात पक्की कर ली। अफीम यहाँ जेल मे आम मिलती है, अगर कुछ जास्ती पैसे खरच किये जाएँ। और मैंने वही किया।

तो मेरी अच्छी भैण जी, अब विदा चाहती हूँ। भगवान करे यह चिट्ठी आपको मिल जाए।

अन्त में आपसे ये ही भिखिया माँगनी हूँ भैण जी, कि मेरे मुन्ने को सँभालकर रखना। बड़ा पिआरा बच्चा है। आपका मन बहलाया करेगा। अगर मेरे बारे मे पूछे तो कह दिया करना कि 'काका, तेरी माँ तेरे वास्ते अच्छी-अच्छी चीजें लेने गई है। जल्दी लौट आवेगी।

कितने अचरज की बात है, भैण जी! कुछ भी समझ

मैं नहीं जाना कि किस्मत मेरे साथ यह कैसा मखौल कर रही है मानो जिस बच्चे को मेरा रोआँ-रोआँ नफरत करता है, उसी की खातिर मैंने इतना कुछ झेला। बहुत बार सोचती हूँ कि आखिर यह मेरा कौन होता है? कोई भी तो नहीं! मेरी कोख का कलंक, मेरा सत्यानाश करने वाला और मेरे सातों कुलों को नरक में ढकेलने वाला, मेरी घर-गृहस्थी को बरबाद करने वाला यही तो है! और मैं हूँ कि उसी की खातिर मरे जा रही हूँ। पर, हाय! फिर सोचती हूँ—भला इसमें बेचारे मासूम का क्या कसूर! और तब भैण जी, मेरे अन्दर से मोह की कोई नदी उमड़ आती है और मेरा तन-मन उस अभागे के वास्ते तड़प उठता है। तब मैं मनाने लगती हूँ कि हे रब जी, तू चाहे मेरी जान निकाल ले, मुझे जैसे तेरा जी चाहे तड़पा-तड़पाकर मार, पर दुहाई है, मेरे मुन्ने का बाल भी बाँका न करना।

अब आपको क्या-क्या बताऊँ, भैण जी! इस दोजखी ने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा है, फिर भी इसके लिए मरी जा रही हूँ।

आप सोचती होंगी कि कैसी बेवकूफ से पाला पड़ गया, जो एक ही बात को बार-बार घसीटे चले जा रही है। तो अब बन्द करती हूँ। मेरी ये वाहियात बातें तो मरने पर ही खत्म होंगी।

दूसरी भिक्षा यह माँगती हूँ कि मेरे भाई की जो आपने बाँह पकड़ी है तो उसे छोड़ना मत! वह मुझ पर सख्त नाराज है। तभी तो उस दिन उसने मेरे साथ जबान साँझी नहीं करी थी। पर इसमें उस बेचारे का कसूर नहीं, भैण जी! मैं पापिन जो ठहरी। सो पिआरी भैण जी, रतना की जिम्मेदारी आप ही पर छोड़े जा रही हूँ। बड़ा भोला है और दिल का बहुत ही साफ है। वह कभी किसी से धोखा-फरेब नहीं करता है। सुभाव का जरा सख्त है। जब से पैदा हुआ, सुख नहीं देखा है उसने। अब

तो भैण जी, तुम ही उसकी सब-कुछ हो। उसको कहना कि मेरे दुख में गल-गलकर अपनी जवानी का नाश न करे। उसे कहना कि अपना पापिन भैण को माफ कर दे। हाय! मैं तो अनभाल ही मारी गई रे मेरे बीर! मैं अल्हड़ थी, नासमझ थी। किसी की मीठी-मीठी बातों में फँस कर मैंने अपना और मेरे बीरे, साथ ही तेरा भी बेड़ा गरक कर डाला।

अच्छा भैण जी, अब बस करती हूँ।

लिखने वाली—सुभद्रा।'

२१

कितना प्रोत्साहित था रमेन्द्र का मन जिस समय वह रिक्शा में बैठी जेल की ओर जा रही थी और कितना हतोत्साह था उसका मन, जब वह जेल से लौट रही थी!

इस समय रिक्शा में बैठी वह बार-बार एक ही बात को लेकर अपने अन्तर को मथे जा रही थी—रतना के बारे में। उस बेचारे पर क्या गुजरेगी जब वह अपनी बहन के इस दुखद परिणाम की बात सुनेगा? पहले ही अभागा कुछ कम दुखी नहीं था।

⊙

उधर हरी-हरी घास पर बैठा रतना किशोर को मूँगफली छील-छीलकर खिला रहा था और साथ ही उसके साथ न जाने क्या-क्या बातें किये जा रहा था कि मूँगफली के दाने चबाते हुए किशोर एक ही साँस में हँसने लग गया। रमेन्द्र मुलाकात को जाते समय मुन्ने को आज रतना के पास छोड़ गई थी। कारण? उसे आज कई काम करने थे; विशेषतया अपील के लिए किसी वकील के यहाँ भी उसे जाना था। फिर कैसे बालक को साथ-साथ घसीटे फिरती? मुन्ना एक-दो दिन में ही रतना के साथ खासा हिल-मिल

गया था।

इधर रमेन्द्र कोठी में प्रविष्ट हुई, उधर किशोर के ठहाके उसके कानों में पड़े, साथ ही रतना की किलकारी भी। लॉन में बैठे दोनों कितने प्रसन्न, कितने विनोदरत दिखाई दे रहे थे !

जैसे ही किशोर ने अपनी 'बहन जी' को आते देखा कि मूंग-फली धरी-की-धरी रह गई, रतना बैठा-का-बैठा रह गया और यह महाशय उछलकर रमेन्द्र की गोद में सवार हो गए और लगे कैफियत माँगने कि वह उसे सोया छोड़कर कहाँ चली गई थी, इतनी देर उसने कहाँ और क्यों लगा दी, इत्यादि।

रमेन्द्र का गला भरा हुआ था। उसने खींचकर किशोर को वक्ष से लगा लिया, उसे चूमा, सहलाया और साथ-साथ कैफियत भी देने लगी।

रतना भी उठकर रमेन्द्र की ओर बढ़ आया यह कहते हुए—

"कर आईं मुलाकात उस अपनी चहेती से ?" रतना के स्वर में घृणा-युक्त कम्पन था और आँखों में प्रतिहिंसा की आँच।

उत्तर में रमेन्द्र के मुँह से कुछ नहीं निकल पाया—प्रयत्न करने पर भी नहीं ; मात्र एक बार रतना की ओर ताककर रह गई। मन-ही-मन शायद कह रही थी—'हाय रे अभागे ! काश, तुम दोनों इसी तरह किलकारियाँ मारते दिखाई देते !' रमेन्द्र के मानस पर चोट-सी लगी, जब कल्पना-ही-कल्पना द्वारा उसने कुछ दूसरे ही प्रकार का दृश्य देखा—माँ के मरने की सूचना पाकर किशोर 'माँ-माँ' पुकारते हुए धाड़ें मार रहा है। अभागिन बहन के इस दुखद अन्त की सूचना पाकर रतना की क्या हालत होगी, इसका वह ठीक से अनुमान नहीं लगा पाई। शायद सुनकर रतना कहेगा—'अच्छा हुआ जो दुष्ट मर गई···शायद···'

अब उत्तर में रमेन्द्र क्या कहे ? मुलाकत कर आई हूँ या सदा-सदा के लिए उसे विदा कर आई हूँ ? कुछ भी तो उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

"क्या हुआ, बीबी जी ?" रमेन्द्र को गुम-सुम पाकर रतना ने कुछ भयभीत-सा होकर पूछा—"आप···आप इस तरह क्यों हैं,

भीबी जी ? क्या हुआ ?"

रतना की बातों पर ध्यान न देकर रमेन्द्र का ध्यान मुन्ने की ओर था।

"किशोर !" उसे गोदी से उतारते हुए उसने दुलारकर कहा—"कल मैं तेरे लिए नए खिलौने लाई थी, सब कहाँ रखे तुमने ?"

"अलमारी में, बहन दी !" बालक ने अपनी तोतली भाषा में उत्तर दिया।

"उनमें एक रबर की गुड़िया भी थी न ?"

"हाँ।"

"तो किशोर, उसके साथ मैं तेरा ब्याह करूँगी, करूँ न ?"

"मेला बाह ?"

"हाँ-हाँ, तेरा।···करेगा ?"

"कलूँगा।"

"तो ऐसा कर, जाकर पहले उसे अच्छी तरह से नहला। खूब साबुन मलकर। और फिर धूप में रखकर उसे सुखाकर ले आ मेरे पास। तब मैं उसे नए कपड़े पहनाकर उसके साथ तेरा ब्याह करूँगी।"

इस 'शुभ सम्वाद' को पाते ही किशोर ठिपक-ठिपक करते हुए भागा वहाँ से।

किशोर के चले जाने पर रमेन्द्र ने अपने को निरापद पाया। उधर रतना उत्तर पाने की प्रतीक्षा में आकुल हो रहा था। कदाचित् उसने समझ लिया था कि बात कोई महत्वपूर्ण है और साथ ही ऐसी भी, जिसे रमेन्द्र बालक की उपस्थिति में बताना नहीं चाहती—तभी तो उसे भगा दिया है उसने।

"रतने !"

"कहिये, बीबी जी !"

"रतने ! सुभद्रा···सुभद्रा ने···" और रमेन्द्र का गला रुँध गया, आँखें डबडबा आईं और अपने वाक्य को पूरा करते नहीं बना।

"आर्ये !" रतना के देवता कूच कर गए; अवश्य ही कोई अनर्थ हो गया है—"क्या हुआ, बीबी जी, उसे ?"

अबकी रमेन्द्र ने साहस जुटा ही लिया और न कहने वाली बात कहने के लिए एक दीर्घ निःश्वास भरकर बोली—

"रतना, वह चली गई ।"

"चली गई ? कहाँ, दीदी जी ?"

"उसने···उसने आत्म-हत्या···" और वाक्य का अन्तिम अंश रमेन्द्र के होंठों में ही मानो घुटकर रह गया ।

"आत्म-हत्या कर ली उसने ?" रतना के नहीं, मानो किसी पाषाण-मूर्ति के मुँह से निकला यह प्रश्न ।

रमेन्द्र ने ध्यान से ताका रतना की ओर, जो गुमसुम पत्थर का-सा निर्जीव और निस्पन्द दिखाई दिया उसे ।

"रतने ! ए रतने ! रतने, इधर देख मेरी तरफ ! मैं किसे पुकार रही हूँ ?"

बार-बार पुकारने पर, बार-बार झिंझोड़ने पर भी रतना नहीं बोला, न ही हिला-डुला । आँखें उसकी खुली थीं, पर ऐसे मानो पुतलियों के स्थान पर किसी ने दो पत्थर टिका दिये हों उनमें ।

रमेन्द्र से नहीं रहा गया । उसने दोनों बाँहें फैलाकर रतना की गर्दन में लपेट दीं । इतने पर भी जब रतना टस-से-मस नहीं हुआ तो रमेन्द्र एक पग और आगे बढ़ी ।

अब रतना का माथा रमेन्द्र के वक्ष से उसी प्रकार सटा हुआ था जैसे अब से थोड़ी देर पहले किशोर का ।

और रतना ? रमेन्द्र के अन्तर से कोई पुकारा—'इसे क्या हो गया ? इसकी आँखों में तो नमी आए शायद एक युग बीत चुका था । तभी तो एक दिन इसने आँसू लाने की दवा माँगी थी ! और वही रतना इस समय गंगा-जमना बहाते हुए रमेन्द्र की कमीज के अग्रभाग को भिगोए चला जा रहा था । मानो घड़ों पानी उसकी आँखों में उमड़ आया हो ।

थोड़े-घने अन्तर से रमेन्द्र की भी यही स्थिति थी । आँसू उसकी आँखों में भी थे, पर रतना की तरह अविरल नहीं ।

कितनी देर तक यही क्रम चलता रहा, दोनों में से कोई नहीं जान पाया । और यह क्रम तब टूटा जब रमेन्द्र ने किशोर को अपनी

और भागे चले आते पाया। भीगी हुई रबर की गुड़िया उसके हाथ में थी, जिसे वह अपने फ्रॉक द्वारा पोंछ-पोंछकर सुखाने का यत्न कर रहा था। साथ ही चिल्लाता चला आ रहा था—

"बहन दी, हमने नहला दिया गुरिया को। ये देको, अब मेआ बाह् कल दो दलदी छे।"

जैसे ही रमेन्द्र ने बालक को आते देखा, झट से वह रतना को छोड़कर अलग हो गई। रतना ने भी तो बालक की आवाज सुन ही ली होगी, नहीं तो कैसे इतनी फुर्ती से वह पीछे हट जाता!

रतना उठकर कमरे के भीतर घुसा। इधर रमेन्द्र और किशोर में होने वाले 'विवाह' के प्रसंग को लेकर वार्तालाप चलने लगा। बीच-बीच में रमेन्द्र का ध्यान रतना की ओर चला जाता जो सम्भवतः भीतर जाते ही पलंग पर औंधे मुँह लेटकर अश्रुपात कर रहा था। पर रमेन्द्र को तो इस समय रतना से भी बढ़कर इस मातृ-स्नेह-वंचित बालक को सँभालने की जरूरत थी। उसे डर था कि कहीं ऐसा न हो कि नन्हे को पता चल जाए—उसकी माँ अब नहीं रही है; अन्यथा अनर्थ हो जाएगा।

३२

चोट शारीरिक हो चाहे मानसिक, वह जब किसी पर पड़ती है तो आरम्भ में उसकी पीड़ा कुछ ऐसी अधिक नहीं जान पड़ती—कुछ तो अचेतनता के कारण और कुछ घाव गरम होने से। परन्तु बाद में जैसे-जैसे घाव ठण्डा होता जाता है, वैसे-वैसे मनुष्य की चेतना लौटने लगती है, क्रमशः उसी से पीड़ा बढ़ने लगती है।

रतना की प्रायः वही स्थिति हुई, जब रमेन्द्र द्वारा उसने सुभद्रा का दुखद समाचार सुना। पहले-पहल उस पर जड़ता का आवरण छा गया और तत्पश्चात् बारी आई चैतन्य की। इसके साथ ही सुभद्रा की आकृति उसकी आँखों के सामने कुछ इस

प्रकार से घूमने लगी—कुछ ऐसे परिवर्तित रूप में कि जिस बहन के प्रति घृणा से उसके शरीर का कण-कण पुता पड़ा था, उसी बहन के प्रति न जाने कहाँ से उसके अन्तर में मोह की बाढ़-सी आ गई। वह तो बल्कि चाहता था कि सुभद्रा मर जाए, सुभद्रा का नाम-निशान संसार से मिट जाए, कभी भूलकर भी उस पापिन की याद उसे न आने पाए। और जब वही-कुछ हो गया, जब सचमुच ही सुभद्रा मर गई, सुभद्रा का नाम-निशान मिट गया, तो चाहिए तो यह था कि रतना के मन को सन्तोष होता—उसे शान्ति मिलती, पर विधि का यह कैसा विधान कि कभी-कभी मनचाही हो जाने पर भी 'मानव' नामधारी इस जीव पर प्रतिकूल प्रक्रिया होने लगती है।

घृणा मोह में परिणत हो गई और मोह के साथ स्नेह-मिश्रित सहानुभूति भी आ मिली? तब पिछला-अगला सब-कुछ भूलकर रतना मोह, स्नेह एवं सहानुभूति-रूपी त्रिवेणी में इतना गहरा डूब गया कि उसे ज्ञात तक नहीं हो पाया कि इस समय वह क्या कर रहा है। एक युवती के वक्ष से लगकर नन्हे-मुन्ने की भाँति उत्तरोतर तब तक सिसकियाँ भरते चले जाना जब तक कि किसी तीसरे व्यक्ति (किशोर) के हस्तक्षेप की सम्भावना नहीं पैदा हो गई। आश्चर्य!

कुछ भी हो, घाव कितना ही गहरा हो, आखिर तो उसे भरना ही होता है, विशेषतः उस स्थिति में जब घाव पर अंकुर लाने का साधन भी मौजूद हो—जब हाथ में प्रेम और सहानुभूति-मिश्रित मरहम की डिबिया लिये कोई आ पहुँचा हो। रतना का घाव भरने में अधिक देर नहीं लगी।

⊙

उपर्युक्त घटना के दूसरे ही दिन इस अनोखे परिवार ने घर लौटने का निश्चय कर लिया।

रमेन्द्र ने कितना भारी दायित्व अपने सिर पर ले रखा था! एक ओर उसे किशोर को सँभालना था और ऐसे ढंग से कि माँ की याद उसके मन से मिट जाए और इसमें उसे पर्याप्त सफलता मिल

रही थी। अपनी इस नई-नवेली 'बहन जी' को पाकर मानो बालक को नव-निधियाँ और अठारह सिद्धियाँ मिल गई हों। आरम्भ में उसने थोड़ा-घना अपनी माँ को अवश्य याद किया था, पर रमेन्द्र के दिन-प्रतिदिन बढ़े जा रहे लाड-प्यार ने माँ का अभाव उसे खटकने नहीं दिया। शनैः-शनैः वह माँ को भूले चला जा रहा था।

और दूसरा दायित्व ? यह था रतना के प्रति। रतना भी यदि किशोर की भाँति बाल्यावस्था में होता तो रमेन्द्र के लिये सँभालना कठिन न होता। पर वह तो 'युवक' था, जिससे उसकी उद्विग्नता को एकदम बदल पाना रमेन्द्र के लिए उतना सरल नहीं था।

यों रतना अच्छी-खासी हालत में दिखाई देता था, पर रमेन्द्र देखती कि बीच-बीच मे अनायास ही उस पर उदासी छा जाती। उसकी मुख-मुद्रा पर कुछ इस प्रकार के भाव परिवर्तित होते उसे दिखाई देते मानो भीतर-ही-भीतर रतना किसी उलझन या किसी संघर्ष में फँसा हुआ है।

रतना अब रमेन्द्र के लिए साधारण न होकर एक बहुमूल्य निधि के रूप मे बदल चुका था। मन-ही-मन रमेन्द्र उसे अपने भावी जीवन-साथी के रूप में ग्रहण कर चुकी थी और गत दिनो वह किसी-न-किसी ढंग से अपने इन मनोभावों को अंशतः रतना पर प्रकट करने का प्रयास भी कर चुकी थी। उसे लग रहा था कि रतना भी उसके प्रति आकृष्ट है। फिर भी रमेन्द्र अभी तक इतना साहस नही कर पाई कि अपने मन की बात स्पष्ट शब्दो मे मुँह से निकाले। कदाचित् इसलिए कि ऐसा करने से पहले उसे अपनी माँ को अपने साथ सहमत करना शेष था। वह नहीं चाहती थी कि उसकी चिररोगिणी माँ, जो पहले ही कुछ कम दुखी नही है, उसकी जल्दबाजी के कारण और अधिक दुखित हो। अतः उसने यही निश्चय कर लिया कि घर जाने पर सबसे पहले वह अपनी माँ को समझा-बुझाकर उसकी स्वीकृति प्राप्त करेगी और तभी खुले शब्दो में वह रतना को इसका आश्वासन देगी।

○

लौटने की तैयारी हो चुकी थी। रात की गाड़ी मे जाने का

निश्चय हो चुका था। किशोर खुशी से फूला नहीं समा रहा था। उसे रमेन्द्र द्वारा विश्वास दिलाया गया था कि वह उसे उसकी माँ के पास ले चलेगी, रेलगाड़ी में, और वहाँ जाकर गुड़िया के साथ उसका ब्याह किया जाएगा। किशोर, जिसने अभी तक रेलगाड़ी की सवारी नहीं की थी, 'रेलगाड़ी' और माँ को मिलने के चाव में इधर-से-उधर और उधर-से-इधर मेमने की तरह उछल-कूद कर रहा था। अपने खिलौनों इत्यादि का स्टाक इधर-उधर से बटोर-बटोरकर ट्रंक में भरे जा रहा था, विशेषतया अपनी भावी पत्नी गुड़िया को।

रमेन्द्र को किशोर की यह बाल-क्रीड़ा बड़ी लुभावनी लग रही थी, पर बीच-बीच में उस पर कुछ चिन्ता का रंग आ जाता जब किशोर कह देता—"यह रबड़ का घोड़ा माँ को दूँगा···गुड़िया माँ को नहीं दूँगा, इसके साथ तो मुझे ब्याह करना है।"

सब तैयारी पूरी हो चुकी थी। किशोर अपने खेल में मस्त था। तभी रमेन्द्र ने देखा, रतना आकर चुपके से उसके निकट बैठ गया।

"क्या बात है, रतने ?"

"कुछ नहीं, बीबी जी !"

"कुछ तो है ?"

"है तो, बीबी जी !"

"फिर सीधे से क्यों नहीं बताता ?"

"क्या बताऊँ, बीबी जी ! छोटा मुँह बड़ी बात है।"

रमेन्द्र को लगा, जैसे रतना के मुँह से निकलने वाली बात उसके बताए बिना ही उसने सुन ली हो। एक अनोखे प्रकार की गुदगुदी-सी होने लगी उसके अन्तर में।

"अच्छा, अब ये कवियों की-सी बातें छोड़ और साफ-साफ कह दे जो कहना चाहता है।"

"साफ-साफ ?"

"हाँ-हाँ।"

"और···और अगर आप नाराज हो गईं, तो ?"

"फिर वही पागलपन ?"

"अच्छा, तो पहले वादा कीजिये !"

"क्या ?"

"कि चाहे जो कुछ भी माँगूँ, आप इन्कार नही करेंगी ।"

"वादा करती हूँ कि जितना-कुछ मेरे बस मे होगा, देने से इन्कार नही करूँगी ।"

"शुक्रिया ! आप कितनी दयालु हैं, बीबी जी !"

"अच्छा, अब बता क्या चाहता है ?"

"वह अभी नही बताऊँगा ।"

"तो कब बताएगा ?"

"अमृतसर जाकर ।"

"अच्छी बात ।"

रमेन्द्र ने सन्तोष की साँस ली । उसे डर था कि यदि रतना इसी समय अपनी बात मनवाने पर अड गया तो उसे कितने सकट का सामना करना पड़ेगा, जबकि उसे माँ की स्वीकृति अभी लेनी है । मन-ही-मन वह रतना की इस दूरदर्शिता की प्रशसा करने लगी ।

"चलो, रतना !" वह उठते हुए बोली—"चलकर सामान वगैरह ठीक करें ।"

"चलिये !" कहकर रतना उठ खड़ा हुआ । रमेन्द्र ने देखा—रतना के चेहरे पर सफलता की आभा झलक रही थी । खुशी के मारे उसके पाँव सीधे नही पड़ रहे थे ।

और रमेन्द्र ने अपने मन को टटोलकर देखा तो वहाँ रतना से भी बढ़-चढ़कर वही सब पाया उसने ।

३३

अब आइये, तनिक पीछे की ओर मुड़ें । यह तो हम देख ही चुके हैं कि रतना के बारे मे जब रमेन्द्र पर विनाशकारी रहस्योद्घाटन हुआ तो वह कुछ इस प्रकार से विचलित हो उठी—विचलित और मर्माहत कि खड़े पाँव दिल्ली जाने पर उतारू हो गई और यह

जानते हुए भी कि अपनी चिररोगिणी माँ को इस हालत में छोड़कर जाना उसके लिए कितना अनुचित, कितना अन्यायपूर्ण होगा, यदि पीछे से माँ को कुछ हो गया ? इस प्रकार की आशंका भी उसके मन में उठी। परन्तु इस भय के होते हुए भी जो उसने कोई की ओर से मुँह मोड़कर 'कर्तव्य' का दामन पकड़ा तो यह मोह साधारण बात नहीं थी।

आखिर वह क्यों दिल्ली जा रही है ? ऐसा क्या आवश्यक काम आ पड़ा उसे ? माँ के इस प्रश्न के उत्तर में क्या वह रतना के बारे में रहस्योद्घाटन कर देती ? सम्भवतः उसका ऐसा करना तो रोगिनी को मार डालने के तुल्य होता। और इसी से रमेन्द्र ने कुछ दूसरा ही बहाना तराशा। उसे कालिज की ओर से दिल्ली जाना है, किसी अत्यावश्यक काम से और सम्भव है कि वहाँ उसे कुछ दिन रुकना पड़े, इत्यादि।

यह तो रहा माँ के प्रति रमेन्द्र का दायित्व। पर अपने पिता से उसने कुछ नहीं छिपाया। सारी बात निस्संकोच उसने उसे बता दी और साथ ही इस बात की भी चेतावनी दी कि माँ को इस रहस्य की कानोंकान खबर नहीं होनी चाहिए, और तब वह रतना के साथ दिल्ली रवाना हुई।

रमेन्द्र के चले जाने के पश्चात् भजनकौर को पति महाशय के स्वभाव-प्रभाव और रहन-सहन में कुछ अनोखा-सा अप्रत्याशित परिवर्तन दिखाई देने लगा।

⊙

प्रतिदिन की भाँति आज भी देवेन्द्रसिंह भजनकौर की बीमारी का हाल-चाल पूछने के लिए उसके कमरे में आया, परन्तु भजनकौर का आश्चर्य सीमा लाँघ गया, जब उसने साधारण पूछताछ के स्थान पर पति को अपने पाँवों पर सिर रखते देखा।

"ऐं ! यह क्या कर रहे हैं ?" अपने दुबले हाथों से उसके सिर को ऊँचा उठाते हुए बोली, "आपको क्या हो गया है आज ?"

"मैं तुमसे माफी माँगने आया हूँ भजन जी, अगर दे सको।"

"माफी ? किस बात की माफी ?"

"एक बात हो तो बताऊँ। सारी उम्र आपसे धोखा करने की।" भजनकौर का हृदय पारे की भाँति काँप रहा था, "पहले सिर उठाइये, आपको मेरी सौगंध।"

"मैं आज..." देवेन्द्रसिंह दोषी की भाँति गिड़गिड़ाया, "मुजरिम के रूप में आपके पास आया हूँ भजन जी, अपनी बच्ची जैसी उदारता आप भी दिखाएँ। मैं दबा जा रहा हूँ अपने पापों के भार से।"

"पर मैंने तो किसी से कभी आपकी शिकायत नहीं की?"

"बेशक आपने आज तक मेरी कभी कोई शिकायत नहीं की, मगर इसी से मेरे पापों में बढ़ोतरी हुई है। इसी ने मुझे निडर और बेशर्म बना दिया और मैं खुले रूप में जो मन में आया करता रहा। अगर भजन जी, आप मेरी लगामें खींचकर रखते तो मैं गुनाहों की दलदल में इतना गहरा न फँसता।"

भजनकौर के हृदय के फैले हुए टुकड़ों को पति के ये वाक्य जैसे गोंद बनकर जोड़ते जा रहे थे। लम्बे समय के पश्चात् आज उसकी आँखों में जीवित चमक थी। वह बाँहों के सहारे उठ बैठी और पति के गले में दोनों बाँहें डालकर काँपती हुई आवाज में बोली, "प्रभु को धन्यवाद है जिसने आपका अन्तर रोशन किया है!"

"पर मुझे एक बार विश्वास करा दो," देवेन्द्रसिंह उसकी पीली बाँहों पर हाथ फेरते हुए बोला, "कि आपने मेरे सारे गुनाह माफ कर दिये हैं। भजन जी, प्रभु को धन्यवाद दो, साथ ही अपनी रमेन्द्र का धन्यवाद करो जिसने आज मेरी आँखें खोल दी है।"

"रमेन्द्र ने?" भजनकौर ने प्रश्नभरी आँखों से उसकी ओर देखकर पूछा, "कैसे?"

जूते उतारकर टाँगें चारपाई पर रखकर देवेन्द्रसिंह अच्छी तरह बैठ गया, पर शीघ्र ही दरवाजा खुला देखकर वह उठा और चिटखनी लगाकर फिर अपने स्थान पर आ बैठा, "सुनो।" कहकर उसने सारी कहानी भजनकौर के सामने दुहरा दी, साथ ही वह रामकहानी भी, जो उसने रमेन्द्र को लिखित रूप में दी थी।

चाहे भजनकौर के लिए यह रामकहानी कोई अनोखी नहीं थी, अब तक इसके कई बड़े-छोटे भाग उसे दृष्टिगोचर हो चुके थे और

सम्भवतः उन्हीं के फलस्वरूप आज वह हड्डियों का ढाँचा बनी चार-पाई पर पड़ी थी, परन्तु आज वे सब दोष उसी पति के मुख से, जो कभी पाँवों पर पानी नहीं पड़ने देता था, सुनकर भजनकौर के अंग-प्रत्यंग में प्रसन्नता और प्रेम की लहर दौड़ गई। उसे प्रतीत हुआ जैसे उसका पति किसी देवलोक के अमृतकुण्ड में नहाकर सारे-का-सारा बदल गया है। एक बार फिर उस प्रभु के दरबार में उसके हाथ जुड़ गए, सिर झुक गया और होंठ खुले, "हे अन्तर्यामी! तुझे लाख-लाख धन्यवाद!"

आयुभर सँभाल-सँभालकर रखे शिकवे उसके हृदय की तख्ती से धुल गए—केवल पति की आँखों से गिरी दो-चार बूँदों से। उसकी आँखों को आज लम्बे समय के पश्चात् स्वर्ग दिखाई दे रहा था, जिसकी तृष्णा में उसने अपना रूप और यौवन गँवा दिये थे। उसकी आँखें खुलीं और अपने शरीर को पति की बाँहों में देखकर एक बार फिर किसी मीठी तन्द्रा में बन्द हो गईं।

"भजन जी!" आवाज में जैसे पूर्णतः अमृत भरा हुआ था; "क्या हमारी टूटी डोरियाँ जुड़ नहीं सकतीं?"

"क्यों इस तरह कहते हैं आप?" भजनकौर रस में सराबोर होकर बोली, "मेरे पैरों का कुछ भी नहीं बिगड़ा। सिर्फ नजर अच्छी होने की जरूरत थी।"

"मेरी नहीं, मेरे भाग्यों की!" देवेन्द्र का हाथ भजनकौर के सिर पर फिर रहा था।

कितनी मीठी झाँकी थी! लम्बे समय से बिछुड़ी दो आत्माओं के पुनर्मिलन का क्षण कितना मीठा होता है!

यह पुनर्मिलन वास्तव में पुनर्जन्म था। यह नवनिर्माण दम्पति-जीवन का था—निराशा की गहराई में खो चुके जीवन का नव-निर्माण।

भजनकौर ने पति की आँखों में देखा—केवल स्वच्छ प्यार और शान्त भावों में तैरते हृदय की प्रतिछाया थी इन आँखों में। एक बार फिर भजनकौर की बाँहें पति के गले में जा पड़ीं और वह प्यार में विभोर होकर बोली, "आपने कभी मुझे मौका ही नहीं दिया कि मैं आपको अपना दिल दिखा सकती। मैं चाहे बहुत अच्छी

स्त्रियों में से न सही, परन्तु आपकी पूजा करने की तृष्णा तो मेरे अन्तर में भरी पड़ी थी।"

"पर भजन जी," देवेन्द्रसिंह के गले में से आवाज़ साफ़ नहीं निकल रही थी, "एक बार फिर वह वक्त हाथ नहीं आ सकता ?"

"हाथ आने की क्या कहते हैं आप, वक्त तो गया ही कहीं नहीं।"

"तो बताओ, मैं इसके लिए क्या कर सकता हूँ ?"

"आप ? आप सिर्फ़ मुझे अपना प्यार देते जाना, बाकी सब-कुछ मैं ही आपको दूंगी। इसी घर की दीवारों में से आपको हँसी छलकती सुनाई देगी।"

"सिर्फ़ प्यार क्यों, श्रद्धा भी !"

भजनकौर का सिर पति के सीने से लगा हुआ था और जब देवेन्द्रसिंह ने उसकी बीमारी के सम्बन्ध में पूछा, तो भजनकौर बोली, "अब दवाओं की ज़रूरत नहीं है मुझे।"

"क्यों ?"

मुझे उसी दवा की ज़रूरत थी, बाकी तो सब ढकोसले थे। मैं जानती थी, मेरी बीमारी इनसे नहीं दूर हो सकती।"

बातें करते-करते भजनकौर को कुछ थकान अनुभव होने लगी। वह थोड़ी देर रुककर फिर बोली, "आप सदा ऐसे ही रहेंगे ?" और साथ ही उसने पति की ओर इस प्रकार देखा, जैसे वह पल-छिन की आँखों उसकी आँखों के सामने से दूर होने वाली हो।

"मैं सदा ऐसा ही रहूँगा, बल्कि इससे भी अच्छा बनकर दिखाऊँगा।" देवेन्द्रसिंह ने दृढ़ता से कहा, परन्तु प्रतीत होता था भजनकौर की शंका इतने से दूर नहीं हुई। वह बोली, "सब-कुछ आदमी के अपने हाथ में नहीं होता।"

"और किसके हाथ में होता है ?"

"उसी के हाथ।" कहते हुए भजनकौर ने श्रद्धा से पलकती आँखें ऊपर की ओर उठाईं।

"यह बात तुम्हारी सच्ची है, भजन जी !…फिर ?"

"आप,उसी के सहारे हो जाएँ।"

"मैं आपकी बात समझा नहीं।"

"इसकी उम्र इधर-उधर में बीत गई है, अब अन्तिम भाग इसी के अर्पण कर दें।" कहते-कहते भजनकौर ने तकिए के नीचे से रुमाल में बँधी हुई कोई वस्तु निकालकर पति को पकड़ा दी।

देवेन्द्रसिंह ने रूमाल की गाँठ खोली—गुरुवाणी की पुस्तिका थी। उसने दोनों हाथों में उठाकर पुस्तिका माथे से लगाई और फिर उसी प्रकार शान्त आँखों से भजनकौर की ओर देखकर बोला, "आज मुझे तुमने यह नई राह दिखाई है, भजन जी! इस पर चलना शुरू करता हूँ, पर मेरा चलना जारी रहेगा या नहीं, यह मैं कह नहीं सकता।"

भजनकौर की आँखों में से उसकी निर्मल आत्मा की परछाईं देवेन्द्रसिंह की आत्मा पर पड़ रही थी। देवेन्द्रसिंह को अनुभव हो रहा था, जैसे उसके शरीर में कोई ऐसी वस्तु भरती जा रही है जिसके महत्त्व को उसने इससे पहले कभी भी अनुभव नहीं किया था।

दो हृदयों की लम्बे समय से बन्द खिड़कियाँ खुल गईं और खुलते ही दोनों आत्माओं ने एक-दूसरी को स्पर्श किया—दोनों आनन्द-विभोर हो उठे।

३४

यात्रा समाप्त हुई और तीनों यात्रियों ने कोठी में प्रवेश किया—चलकर नहीं, बल्कि उड़कर। रमेन्द्र सबसे पहले अपनी माँ के कमरे में पहुँची और तब दोनों माँ-बेटी का अमृतमय मिलन बेटी माँ को पाकर और माँ बेटी को पाकर धन्य हो उठीं; और माँ से कहीं बढ़कर बेटी, जिसका कारण था माँ के स्वास्थ्य में परिवर्तन। रमेन्द्र तो रास्ते-भर इसी संशय में मरी जा रही थी कि उसकी माँ पता नहीं कितनी क्षीण, कितनी दुर्बल हो गई होगी, पर उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब माँ को उसने भली-चँगी जैसी पाया। मानो उसके जाने के बाद धन्वन्तरि की औषधि मिल गई हो उसे।

और तब माँ-बेटी मे वार्तालाप का क्रम चलने लगा। किस प्रकार भजनकौर के जीवन का दुखान्त नाटक इतनी जल्दी सुखान्त में बदल गया—माँ ने बेटी को आदि से अन्त तक सारा प्रसग कह सुनाया, जिसे रमेन्द्र यत्नपूर्वक माँ से छिपाए रखना चाहती थी। अर्थात् दामोदरी का किस्सा, सुभद्रा की कहानी, रतना का वृत्तान्त और दूसरा जितना ही कुछ, जो भजनकौर ने अपने पति द्वारा सुन रखा था।

"तब मेरे छिपाने से क्या लाभ ?" सोचते हुए रमेन्द्र ने भी निस्संकोच अपनी यात्रा की वास्तविकता माँ को खोल सुनाई।

सहसा बातों का सिलसिला कटकर रह गया, जब रमेन्द्र का मात्र एक ही रहस्य, जो उसने जानबूझकर ही माँ से छुपा रखा था, अनायास ही खुल गया और इसका कारण था किशोर का कमरे में प्रवेश। अपने नन्हे-नन्हे बूट टिपकाते हुए जब किशोर कमरे मे आ घुसा और आते ही रमेन्द्र की गोद में जा सवार हुआ तो रमेन्द्र द्वारा उसे आदेश मिला—

"शोरी ! अरे, माता जी को प्रणाम नहीं किया पगले !" आदेश का पालन करते हुए किशोर ने फुर्ती से रमेन्द्र की गोद छोड़ दी और झट से जाकर उसने भजनकौर के पाँव छुए यह कहते हुए—"पनाम, माता दी !"

बालक का सिर सहलाते हुए भजनकौर ने आशीर्वाद दिया—"जियो बेटा, बडी-बडी उम्र हो !" और फिर जिज्ञासा से रमेन्द्र की ओर ताका—"कितना प्यारा बच्चा है ! किसका लडका है रमेन्द्र ?"

किशोर कर्त्तव्य-पालन के पश्चात् फिर से अपनी 'बहन जी' की गोद में सवार हो गया।

'किसका लडका है' प्रश्न जितना छोटा था, उत्तर उतनाहुए विस्तृत था, पर रमेन्द्र बलपूर्वक उतने ही शब्दो मे उसे समेटते ेह बोली—

"आपका, माता जी !" और एक रहस्यमय मुस्कान उसके अधरो पर फैल गई।

इस 'झूटे' आश्वासन ने भजनकौर को कुछ आहत-सा किया। मानो मन-ही-मन कह रही हो—'मैं इतनी भाग्य शालिनी कहाँ !'

भजनकौर का ख्याल था कि होगा किसी अड़ोसी-पड़ोसी का। साथ ही उसकी आँखें कुछ इस प्रकार से बालक पर गड़ी थीं मानो उसकी भसल निगाहों और मुद्राओं में से कुछ खोज रही हों।

माँ की जिज्ञासा मिटाने को रमेन्द्र फिर बोली—"मत मानिये माता जी, आपकी सौगन्ध खाकर कहती हूँ, किशोर अनाथ ही है।"

भजनकौर सम्भवतः सोच रही थी—यह लड़की दिल्ली के किसी अनाथालय से ले आई होगी इसे। और यह जानकर भजनकौर के मन को उतना सन्तोष हुआ जितना किसी भी निपूती को दत्तक पुत्र पाकर होता है।

माँ को अब अधिक देर तक अँधेरे में रखना रमेन्द्र ने योग्य नहीं समझा और बहुत लम्बी कहानी को अधिकाधिक संक्षिप्त करते हुए, उसने माँ के सामने इस गुत्थी को खोल ही दिया।

कहानी का सुनना था कि भजनकौर फूट ही तो पड़ी। उछलकर उसने बालक को रमेन्द्र की गोद से खींचा और उसे छाती से भींच लिया। उसकी आँखें छलछला रही थीं। बोलने का यत्न करने पर भी वह बोलने में असमर्थ थी। मुँह के शब्द वात्सल्य की गर्मी में पिघलकर उसके होंठों पर बिखर जाते थे। होंठों की कँपकँपी बताती थी कि उसका मन वात्सल्य:प्रेम से सराबोर हो उठा है।

किशोर इस अपरिचिता की बाँहों में भिचा हुआ कुछ आकुल-सा होकर लपक-लपककर रमेन्द्र की ओर जाने का प्रयास कर रहा था। रमेन्द्र ने फिर से उसे गोद में ले लिया और बाहर निकल गई। उसे अभी तक भी यही भय बना रहता था कि किशोर को कहीं अपनी माँ की याद न आने लगे।

बाहर निकली तो उसे एक दूसरा ही दृश्य देखने को मिला। लीला बरामदे में खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी, जिस पर दृष्टि पड़ते ही रमेन्द्र भौंचक्की-सी रह गई और मन-ही-मन सोचने लगी—क्या यह वही लीला है? उसने किशोर को गोद से उतारा और लीला को आलिंगन में भरते हुए चिल्लाने के-से स्वर में बोल उठी—

"तू कहाँ छुपी थी री?"

उत्तर में लीला कुछ कहती कि इससे पहले ही रमेन्द्र ने उस

पर प्रश्नों की बौछार शुरू कर दी।—

"लीला! अरी, तू वही लीला है? कौन-सी चक्की का आटा खाया जो इतना रूप बरस पड़ा तुझ पर? अरे मरी, पहले ही क्या कम थी? सच बता, कौन-सी बूटी सुंघा दी किसी ने तुझे, जो एक दम फूटे पड़ रही है तेरी जवानी? और ऊपर से यह फैशन! तुझे तो ढंग से लहँगा-कुरता पहनना नहीं आता था और यह तेरी साड़ी, बण्डी, यह कानों में···"

जैसे-जैसे रमेन्द्र बोलती गई, उसी क्रम से लीला छुई-मुई होकर उसके साथ चिपटती गई; और जब रमेन्द्र इस स्तुति से टली नहीं तो हथेली द्वारा उसका मुँह बन्द करते और लजाते हुए वह बोली—

"अब छोड़ो, बहन जी! बस भी करो!"

पर रमेन्द्र थी कि न तो उसने उसे छोड़ा, न ही बस की। अपने मुँह के आगे से बलपूर्वक उसका हाथ हटाते हुए वही अपना राग अलापती चली गई—

"···कहीं उड़ने की तैयारी तो नहीं कर ली है री? पूछती हूँ जाकर पंचू से।"

लज्जा के मारे गड़े जा रही थी लीला, पर रमेन्द्र को उस पर तनिक भी दया नहीं आई। अन्ततः जब वह अपनी ढिठाई से बाज नहीं आई तो लीला तोड़-विछोड़ का रास्ता अपनाते हुए उसकी बाँहों में से निकल भागी और अपने क्वार्टर में जा छिपी।

किशोर खेलते-खेलते दूर निकल गया था, अतः लीला का पीछा छोड़कर अथवा इस 'पूछताछ' के काम को स्थगित करके रमेन्द्र उसी के पीछे भागी।

३५

भजनकौर के निराश एवं अन्धकारमय जीवन में आशा की, बल्कि कहना चाहिए आशा-पूर्ति की किरण जगमगा उठी, जिसके प्रकाश में उसने देखा—उसकी गृहस्थरूपी नैया, जो बहुत समय से

निराशा की गहराइयों में डूब चुकी थी, फिर से उभरने लगी है। एक गृहिणी के जीवन को स्थायी रूप में स्थिर रखने के लिए मात्र दो ही तो आधार-स्तम्भ रहते हैं—पति और पुत्र। भजनकौर इन दोनों स्तम्भों के अभाव के कारण ही तो जीवन और मृत्यु के बीच लटकी चली आ रही थी। और आज उसने देखा—उसके दोनों स्तम्भ आधार-स्तम्भ फिर से निर्मित हो उठे हैं—पति और पुत्र के रूप में।

सौभाग्यवश भजनकौर ने इससे पहले ही अपने पति द्वारा सब कुछ सुन रखा था। अपने पापों की गठरी देवेन्द्रसिंह ने ज्यों-की-त्यों उसके सामने रख दी थी और स्वयं भी पश्चाताप और आत्मग्लानि में डूबकर। प्रभावित होकर भजनकौर ने उस पापात्मा पति को न केवल क्षमा कर दिया था, बल्कि द्रवित होकर हृदय से लगा लिया। यदि ऐसा न हुआ होता तो सम्भव था कि इस बालक (किशोर) को देखकर उसके अन्तर में डाह की आग भड़क उठती। अतः ऐसा होने के स्थान पर हुआ यह कि भजनकौर को यह बालक अपनी वास्तविक सन्तान जान पड़ा। तभी तो बालक को देखकर उसमें वात्सल्य की बाढ़ आने लगी थी।

एक सुन्दर बालक का घर में प्रवेश कितना सुखकर सिद्ध हुआ! सब ओर चहल-पहल दिखाई देने लगी। बालक किसका है, कहाँ से आया है, यह भी अपनी जगह पर एक जटिल समस्या थी। पर रमेन्द्र ने, जिसने पहले से ही इसका ढंग सोच रखा था, हर किसी को यही बताया कि दिल्ली के एक अनाथालय से वह उसे लाई है और लाई है इस अभिप्राय से कि माता-पिता इसे गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बना लें।

इस नई चहल-पहल में किशोर इतना हिलमिल गया कि अपनी वास्तविक माँ सुभद्रा को एक प्रकार से भूल ही गया।

वह तो जो-कुछ और जितना-कुछ हुआ, सब किसी के मन-मुताबिक हुआ, पर रमेन्द्र के लिए सबसे बड़ी समस्या का समाधान करना तो अभी शेष था और वह था रतना के बारे में, अथवा रतना के साथ प्रणय-बन्धन में बँधने से पूर्व माँ-बाप से इसकी अनुमति प्राप्त करना। यूँ रमेन्द्र मन द्वारा चाहे रतना को अपना जीवन-

अपनी मानने लगी थी, पर यथार्थरूपेण उसे पति-रूप में ग्रहण करना तो तभी सम्भव था, जब उसे माता-पिता का आशीर्वाद प्राप्त हो। अब रमेन्द्र के लिए कठिनाई यह थी कि इतनी अनोखी बात कैसे मुँह फाड़कर वह उनसे कह दे? विशेषतः इसलिए भी कि रतना के प्रति उसके पिता का रवैया अभी तक भी कुछ अधिक अच्छा नहीं है—ऐसा ही उसे सन्देह था। वह प्रायः देखती थी कि देवेन्द्रसिंह की नजर रतना पर पड़ती, उसे लगता—जैसे उसके माथे पर बल पड़ गए हैं। पर रमेन्द्र का यह सन्देह निर्मूल सिद्ध हुआ जब एक दिन उन दोनों में एक लम्बा वार्तालाप हुआ, जिसे बाद में रतना ने अक्षरशः उसे सुनाया, अर्थात् रतना जब दिल्ली से गाड़ी पर सवार हुआ था तो एक आशंका उसके साथ ही चली आई थी, 'शायद रमेन्द्र के घर में जाकर मेरी बेइज्जती हो! शायद मुझे देखकर रमेन्द्र का पिता भड़क उठे!' पर यहाँ पहुँचकर उसने जो देखा अथवा अनुभव किया वह उसकी आशंका के प्रतिकूल था। भजनकौर के दिल में तो पहले से ही उसके लिए स्थान बन चुका था अथवा कहिये कि रमेन्द्र ने बना दिया था। हाँ, देवेन्द्रसिंह कुछ खिंचा खिंचा दिखाई देता था, परन्तु धीरे-धीरे रतना अनुभव कर रहा था जैसे देवेन्द्रसिंह हृदय से उसके निकट होता आ रहा था। तो भी रतना इतना अवश्य समझता था कि देवेन्द्रसिंह की आँखें अच्छी तरह उसके सामने नहीं उठती।

देवेन्द्रसिंह कोठी के पिछवाड़े अमरूदों के एक वृक्ष के नीचे आराम-कुर्सी पर बैठा कोई पुस्तक पढ़ रहा था। इसी समय किसी काम के लिए रतना उधर से गुजरा। देवेन्द्रसिंह ने उसे आवाज दी। वह आ गया, पर कुछ डरता-डरता। संस्कारों की परछाई कई बार अनहोनी वस्तुएँ हमारे सामने ला रखती है।

देवेन्द्रसिंह ने पुस्तक एक ओर रख दी और उठकर रतना की ओर बढ़ा। रतना ने आते ही बड़ी मधुर आवाज में कहा, "आज्ञा करो, पिता जी!"

उसकी जुबान में मिठास, आँखों में आदर और क्रियाओं में उदारता देखकर देवेन्द्रसिंह आश्चर्य से सोच रहा था—क्या यह वही

[illegible] ?'

"आज मेरा तुमसे कुछ बातें करने को जी चाहता है।" उसके साथ-साथ सहमा-सहमी नज़रों देवेन्द्रसिंह ने कहा।

"कहिये क्या बात, पिता जी!" रतना ने उत्तर दिया।

"मैं तुमसे एक प्रार्थना करना चाहता हूँ, रतना!" देवेन्द्रसिंह के हृदय में से जैसे कोई भारी वस्तु उमड़ती आ रही थी।

"प्रार्थना न कहो," रतना नम्रतापूर्वक बोला—"आपके शब्दों को सुधारने में अगर ढिठाई मुझसे हो जाए। आपके वचनों को 'आज्ञा' कही जाती है, प्रार्थना नहीं की जाती।"

"पर मैं अब इस योग्य नहीं हूँ, रतना! मैं तेरे लिए एक अक्षम्य मुजरिम हूँ।"

"मुझे शर्मिन्दा न करें, पिता जी! रमेन्द्र जी ने इस बात की बिल्कुल कोई गुञ्जाइश नहीं रहने दी। मेरे सिर पर उन्होंने अपने अहसानों का इतना कर्ज चढ़ा दिया है कि 'माफी' का अब प्रश्न ही नहीं उठ सकता।"

"तो मैं समझ लूँ कि तुमने मेरे गुनाहों को माफ कर दिया है?"

"गुनाह तो पिता जी, हरएक मनुष्य से हो जाते हैं; किसी से बहुत, किसी से कम।"

"पर मेरे गुनाह ऐसे हैं जिनकी मानवता आशा ही नहीं कर सकती।"

"आप इस समय मेरे पिता हैं। मैं अपने पिता को दुखी नहीं देख सकता। जिस ढंग से आपकी आत्मा शान्त हो सकती हो, मैं वही-कुछ करने को तैयार हूँ। बताइये, मैं क्या कर सकता हूँ?"

"दिल से मुझे माफ कर दो! एक बार दिल की आवाज से कह कि तूने मुझे माफ किया!"

"इस बात का अधिकार मैं रमेन्द्र जी को दे चुका हूँ, पिता जी! उनके आगे आपकी माफी के लिए सिफारिश भी कर चुका हूँ। अगर वे आपको माफी दे चुके हैं, तो समझिये सब-कुछ ठीक हो चुका है। बाकी अगर ज़रूर मेरे मुँह से कहलवाकर ही आपको सन्तुष्टि हो सकती है, तो सौ बार कहता हूँ कि मैंने आपको माफ किया।"

देवेन्द्रसिंह की बाँहें रतना की ओर उठीं—वह उसके सीने से जा लगा।

जब बाँहें खुलीं तो रतना ने देखा—देवेन्द्रसिंह की आँखें बह रही थीं।

यह पहला दिन था, जब देवेन्द्रसिंह के मन पर से वे मैले धब्बे साफ़ हो गए, जो कई वर्षों से उसके अन्दर धुन्ध फैलाए हुए थे।

३६

शनैः-शनैः नहीं, बल्कि तेजी से घर का वातावरण बदलने लगा। वही घर—जिसकी दीवारें तक आहें भरा करती थीं, अब कहकहों से गूँजने लगी। इधर भजनकौर का स्वास्थ्य लौट रहा था तो उधर देवेन्द्रसिंह का दूषित आचरण दिन-प्रतिदिन पवित्रता की ओर मुड़ने लगा। इन दोनों के पुनर्गठन में यदि अभी तक भी कुछ कोर-कसर बाकी रह गई थी तो उसे पूरा कर दिया नन्हे-मुन्ने किशोर ने। पास-पड़ोस में सब कोई समझने लगे कि सरदार ने उसे दत्तक पुत्र बनाने के लिए दिल्ली के किसी अनाथालय से मँगवाया है। पर वास्तविकता को केवल घर के ये तीनों व्यक्ति ही जानते थे—पति, पत्नी और बेटी। यहाँ तक कि घर के सबसे अधिक विश्वासपात्र पंचू को भी वास्तविकता के बारे में ज्ञान नहीं था, न ही रमेन्द्र की बाल-भगिनी लीला को।

किशोर के लालन-पालन में कुछ भी उठा नहीं रखा जा रहा था। कुछ तो बालक पहले से ही नख से शिख तक सौन्दर्य का प्रतीक था, ऊपर से घरभर के लोगों का स्नेह-पात्र। क्यों न उसकी सुन्दरता को चार चाँद लग जाते!

; कालिज खुल चुका
...लवाया गया था, वह
...स बारे में जब-जब भी

माता-पिता द्वारा विवाह के बारे में उसके सामने बात चलती तो वह टालमटोल कर देती थी, पर इधर जब से वह दिल्ली से लौटी है उसने स्पष्ट शब्दों में अपनी माँ से कह दिया है कि वह अपनी शादी अपनी ही इच्छा से करेगी।

'अपनी इच्छा से' कहने से रमेन्द्र का क्या अभिप्राय है, इसे समझने के लिए जब भजनकौर ने उसे पूछा—"तो क्या अपनी मन-मर्जी का कोई लड़का है तेरी ताक में ?" तो रमेन्द्र का उत्तर था—"हाँ, है तो !"

और इसके आगे जब माँ ने बेटी का मन टटोलने का प्रयत्न किया तो रमेन्द्र ने इतना ही कहकर बात समाप्त कर दी—

"मेरी ताक में जरूर है, माता जी, और जल्दी ही आपको बता दूँगी, पर विनती करती हूँ कि हाथ झाड़कर मेरे पीछे न पड़िये। बहुत जल्दी आपको बताने वाली हूँ।"

बेटी की बात सुनकर माँ को सन्तोष हुआ। भजनकौर ने जब पति को बताया तो उसे भी एक प्रकार से सन्तोष ही हुआ। वह पहले की-सी परिस्थितियों में होता तो सम्भव था कि अपनी बात मनवाने के लिए अड़ जाता। पर अब, जबकि वह किसी दूसरी ही स्थिति में था, साथ ही अपनी बेटी का महत्त्व एवं आदर भी उसकी नजरों में बढ़ चुका था, तो हील-हुज्जत करने का साहस कहाँ से लाता ! अतः उसने भी 'तथास्तु' कह दिया।

वह तो सब-कुछ रमेन्द्र के अनुकूल ही हुआ, पर इससे आगे ? सबसे पहले उसने दो सप्ताह की छुट्टियों के लिये अर्जी भेज दी। वह रतना के बारे में अपने माता-पिता से स्वीकृति प्राप्त करना चाहती थी, पर यत्न करने पर भी अभी तक वह ऐसा नहीं कर पाई—कदाचित् इस बात की आशंका से कि यदि उन लोगों ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया, तो ? ठुकराने का कारण भी तो था ! कैसे वे लोग अपनी इकलौती बेटी को एक तुच्छ, बल्कि तुच्छ से भी घटियल व्यक्ति के पल्ले बाँधने को तैयार हो सकेंगे ?

'तैयार हों, चाहे न हों,' रात लेटे-लेटे रमेन्द्र ने दृढ़ निश्चय कर लिया—'रतना को छोड़ दूसरे किसी व्यक्ति को पति-रूप में

ग्रहण करना मेरे लिए नितान्त असम्भव है। मुझे न केवल रतना का ऋण ही चुकाना है, न केवल अपने पिता के पाप का प्रायश्चित्त करने का ही मेरे लिए यह एक साधन है, बल्कि मैं रतना से प्रेम करती हूँ। अगर पिता जी कुछ तीन-पाँच करेंगे तो ये सब बातें खोलकर उन्हें कह सुनाऊँगी। बाकी रही माता जी की सहमति की बात। उन्हें मनाना तो कुछ भी कठिन नहीं होगा। वे मेरी किसी बात को टाल दें, ऐसा कभी नहीं हो सकता।'

इस परिणाम पर पहुँचकर वह लेटे-लेटे उठ बैठी और बैठे-बैठे उसकी विचारधारा थोड़ी और आगे बढ़ी—

'अधिक-से-अधिक पिता जी यही आपत्ति कर सकते हैं न कि रतना पढ़ा-लिखा नहीं है, या कि वह एक निचले परिवार का है? तो मैं तड़ाक से कह दूँगी कि पिता जी, क्या बे-पढ़ा-लिखा आदमी एक दुराचारी से भी बुरा होता है? सम्भव था कि रतना को यदि अवसर मिलता तो पढ़-लिखकर मुझसे भी कहीं आगे निकल जाता। और पिता जी, बताइये कि किसने उसे सब अच्छे अवसरों से वंचित किया? यदि आप ही ने, तो फिर आपको प्रायश्चित्त रूप में ऐसा करना ही होगा। क्या कहा? बदनामी होगी आपकी? सच ही कहा आपने। पर बदनामी या नेकनामी का ख़याल आपको तब क्यों न आया पिता जी, जब…' और इससे आगे रमेन्द्र नहीं सोच पाई। क्रोध के मारे उसका शरीर काँपने लगा। वह लेट गई और लेटे-ही-लेटे घण्टों तक इसी प्रकार के अनगिनत उद्‌गारों की गह-राइयों में डूबती-उतरती चली गई।

इसी डूबने-उतराने के अन्तर्गत रतना का प्रसंग आ टपका और इस प्रसंग के अनुरूप वह सोचने लग गई—

'…उधर वह भी तो कुछ कम प्रतीक्षा नहीं कर रहा है। न जाने कितना-कुछ उसने अपने अन्दर में समेट रखा है मुझे कहने के लिए। कितने शर्मीले स्वभाव का है! अभी तो दिल्ली रहते हुए एक से अधिक बार मन की बात कहने के लिए आया और जब-जब भी जबान खोलने को हुआ कि गुम-सुम होकर रह जाता रहा। सोचता होगा कि कैसे इतनी बड़ी बात मुँह से निकाल दे। अपने

मन में सोचता होगा कि कहाँ एक लखपति की लड़की और कहाँ मैं ! शायद···शायद मेरी नाराज़गी के डर से ही मेरे आगे यह प्रस्ताव रखने से कतराता है । तभी तो कह दिया कि अमृतसर जाकर बताऊँगा । और वहाँ आने पर भी तो शायद इतना साहस नहीं जुटा पाता है । इधर जब भी मेरे सामने आता है तो झेंपते हुए, सकुचाते हुए । क्या देखती नहीं हूँ उसके असमंजस को ? जैसे अब कुछ बोला, तब कुछ कहा । और फिर होंठ पर से होंठ उठाए लौट जाता है । पूछती हूँ कि क्या बात है, रतना ? क्या कहना चाहता है ? तो इतना ही उत्तर देकर भाग गया होता है—कुछ नहीं बीबी जी, यूँ ही ।—अब कैसे उसके होंठों का ताला खोला जाए ? किस तरह उसे विश्वास दिलाऊँ कि अरे पगले ! जिसके आगे मन की गाँठ खोलने से तू इतना सकुचाता है, वह तो पहले से ही अपना सर्वस्व तुझ पर न्योछावर किये बैठी है !···

'तो अब इस काम में अधिक देर नहीं होनी चाहिए,' अन्ततः रमेन्द्र इस परिणाम पर पहुँची—'कल रतना को एकान्त में बिठलाकर मामला स्पष्ट कर देना चाहिए । आगे जो होगा, देखा जाएगा ।'

इस निर्णय पर पहुँचकर रमेन्द्र को अपना मन हल्का-फुल्का जान पड़ने लगा और उसे नींद आने लगी ।

३७

और दूसरे दिन रमेन्द्र ने, जैसाकि रात सोने से पहले उसने निश्चय किया था, इसके लिए अवसर पैदा कर ही लिया । दिनभर उसे रतना कहीं दिखाई नहीं दिया था । शाम को जब पंचू के निकट उसने उसे पाया तो बोली—"रतने, चलो ज़रा घूम आएँ !"

"कहाँ चलियेगा, बीबी जी ?" रतना के प्रसन्न मुद्रा में पूछने पर रमेन्द्र बोली—"चाहे कहीं भी ; कम्पनी बाग ही चले चलें !"

"आपने तो मेरे मन की ही कही, बीबी जी ! मैं पहले से ही

नहीं चाहता था कि···"

"तो चलो!"

और इसके थोड़ी देर बाद वे दोनों कम्पनी बाग के एकान्त कोने में बैठे बातें कर रहे थे।

रमेन्द्र ने बातचीत का श्रीगणेश इस प्रश्न से किया—

"पहले तुम ही बतलाओ, रतना, कि तुम किसलिये मुझसे मिलना चाहते थे?"

"नहीं बीबी जी, पहले आप बताइये!"

"नहीं, पहले तुम।"

"नहीं, पहले आप।"

"रतने, जिद मत करो!"

"अच्छी बात। जैसी आपकी आज्ञा, बीबी जी!"

"हाँ, तो शुरू करो!"

रतना को असमंजस में पाकर रमेन्द्र ने उसका कंधा थपथपाया—

"अरे, तुम इतना शर्माते क्यों हो, रतना? क्या मुझ पर विश्वास नहीं है?"

रमेन्द्र को समझने में देर नहीं लगी कि रतना क्या कहना चाहता है और क्यों हिचकिचा रहा है। कदाचित् इसी से कि रमेन्द्र की तुलना में अपने को इतना छोटा—इतना तुच्छ पा रहा है कि मुँह से निकलने वाली बात उसे असंगत या असभ्य मालूम देती है। एक बार फिर रमेन्द्र का हाथ उसके कन्धे पर जा टिका। इस बार की थपथपाहट में अवश्य ही ऐसा कुछ था जिसने रतना की वाणी में अंशतः स्फूर्ति पैदा कर दी—

"आपको याद है न, बीबी जी···?"

याद होने पर भी रमेन्द्र ने एकदम अनजान होकर पूछा—"क्या?"

"दिल्ली में रहते हुए मैंने आपसे कुछ···एक याचना की थी?"

रमेन्द्र और भी अनजान बनकर, मानो उसे कुछ याद न हो, बोली—"कौन-सी याचना? याद नहीं आ रहा है।"

"इतनी जल्दी भूल गईं? वही तो!"

"और क्या पहेलियाँ बूझे जा रहा है !"

"मैंने… मैंने…बीबी जी, जब आपके पूछने पर मैंने कहा था कि अमृतसर जाकर बताऊँगा। आया कुछ याद ?"

"अरे हाँ !" मानो रमेन्द्र को याद हो आया हो, बोली—"मुझे तो भूल ही गई थी यह बात।" और कहते हुए रमेन्द्र ने इतने जोर से ठहाका लगाया कि देखकर रतना न केवल खिल उठा, बल्कि बचा-खुचा संकोच भी जाता रहा—"तो आप मुझे बनाने लगीं, बीबी जी ?"

न जाने क्यों, रमेन्द्र की आँखें कुछ झुक-सी गईं जो इस बात का सूचक थी कि मन-ही-मन वह कितनी पुलकित, कितनी गर्वीली हो उठी है अपनी आशा-पूर्ति के वेग में। मानो आज उसने अपने भावी जीवन-साथी को पा लिया है।

"अच्छा, आगे कह !"

"आगे कहूँ क्या, बीबी जी, जो कुछ है, उसे बोलकर नहीं कह पाऊँगा।"

"तो और कैसे ?"

"लिखित रूप में।"

"अच्छा, यही सही। तो लिखकर ही बता दे।" कहते हुए रमेन्द्र को ऐसा लगा, मानो उसकी मनोकामना उसके पैरों के निकट आ पहुँची है। लिखितरूप में रतना क्या बताने वाला है, रमेन्द्र से छिपा नहीं था—मात्र साढ़े तीन अक्षरीय शब्द ही तो हैं ! उसका दिल धड़कने लगा, चाहे दिल धड़कने की इसमें कोई विशेष बात नहीं थी। वही होने जा रहा था, जो पहले से ही निश्चित था।

रमेन्द्र की आँखें पूर्ववत् झुकी हुई थीं और इन झुकी-झुकी आँखों के पीछे कितना ही कुछ ढह रहा, कितना ही कुछ बन रहा उसे दिखाई दे रहा था…और अगर पिता जी ने आपत्ति की…अगर माता जी भड़क उठीं…नहीं। ऐसा कदापि नहीं होने का…रतना ? रतना नहीं, श्रीमान लाला रतनचन्द जी रईसे-आज़म…

"तो यह लीजिये !" इस वाक्य के साथ सहसा रमेन्द्र के हाथों पर कागजों का एक छोटा-सा पुलिन्दा-सा आ टिका, जिसको थामते

और ताकते हुए वह सोच रही थी—सारे तीन अक्षरीय शब्द ? पर यह तो, इन कागजों में तो हजारों अक्षर होंगे शायद !

तीव्रता से उसके दोनों हाथ गति करने लगे और हाथों के साथ-साथ आँखों की पुतलियाँ भी। उसने आरम्भिक वाक्यांश "पूज्य बीबी जी" से पढ़ना आरम्भ किया। और इसके साथ-साथ उसे रमेन्द्र की मूर्खता अथवा उसके मानसिक पटियापन पर कुछ ग्लानि-सी होने लगी—पागल कहीं का! भला अपनी भावी पत्नी को 'पूज्य' और 'बीबी जी' कहकर सम्बोधित किया जाता है कहीं ? कितना अच्छा होता जो इसके स्थान पर 'प्राणेश्वरी'—'मेरे जीवन की मधुर ज्योति' इत्यादि लिखता !

"पूज्य बीबी जी,

पहले मुझे आपसे क्षमा-प्रार्थना करनी है, जो साथ रहते हुए भी इतने दिनों तक मैंने इस भेद को आपसे छुपाए रखा। सम्भव है कि मेरी बात सुनकर आप मुझे ओछा समझने लगें। पर सच जानिये, दिल का कमजोर भले ही होऊँ, ओछा नहीं हूँ। छुपाए रखने का कारण यदि था तो यही कि मेरी बात सुनकर कहीं आप यह न सोचने लगें कि अभी कल तक तो मारा-मारा फिरता था, तन ढाँपने को कपड़ा नहीं था, और आज इसे प्रेम-मोहब्बत की पेंग बढ़ाने की सूझने लगी…"

पत्र का पहला पैराग्राफ़ समाप्त हुआ और रमेन्द्र को थोड़ा रुकना पड़ा—कदाचित् उमड़े आ रहे प्रेमोन्माद को सँभालने के लिए।

"…अब से कुछ दिन पहले—जिस दिन इस कोठी में पहली बार दाखिल हुआ, सच पूछिये तो उसी दिन से मेरा दिल हाथ से जाता रहा। तब मैं बुरी-से-बुरी हालत में था और आपकी दया-माया से न केवल मुझे आश्रय मिला बल्कि हर प्रकार का आश्वासन भी। क्या ऐसी हालत में किसी को प्रेम-मोहब्बत की बातें सूझ सकती हैं ? पर हजार यत्न करने पर भी अपने को सँभालने में सफल न हो सका। इसमें क्या मेरा दोष था ?…"

दूसरा पैराग्राफ समाप्त हुआ। रमेन्द्र की आँखें अब पंक्तियों पर से हटकर आगे में खोई हुई थीं। उसे पता तक नहीं चला कि पत्र उसके हाथ में थमाने के बाद रमला कब और किधर चला गया।

तीसरा पैराग्राफ आरम्भ हुआ—

"...ओह! जिन दिनों हम लोग दिल्ली में थे, क्या बताऊँ भाभी जी, एक ओर तो मैं आपके एहसानों तले दबा जा रहा था—आप मेरी खातिर कितने कष्ट झेल रही थीं! न दिन देखती, न रात; और सुबह से रात तक सड़कों-मोहल्लों की खाक छानती फिरतीं! और मेरी मूर्खता देखिये कि उन्हीं दिनों मेरे सिर पर प्रेम का भूत सवार था। इसके साथ ही मुझे इस बात का भी डर बना रहता कि कहीं भूल से भी अगर आपके सामने मेरे मुँह से कुछ ऐसी-वैसी बात निकल गई तो आप कितनी घृणा करने लगेंगी मुझे! या शायद दुत्कार कर मुझे घर से बाहर ही निकाल देंगी। पर बिना बताए भी तो नहीं चलता था! करता तो क्या करता! बहुत बार सोचा कि जो होगा देखा जाएगा—इस भेद को अब और नहीं छिपाऊँगा, पर नहीं हो पाया मुझमें इतना साहस।"

तीसरा पैराग्राफ समाप्त हुआ।

रमेन्द्र के लिए अब अपने आह्लाद—अपने गगनस्पर्शी उद्‌गारों को छोटे-से मन में समा पाना कठिन हो उठा। उसे लग रहा था कि 'स्वर्ग' नाम का संसार जो आज तक उसके लिए कल्पना से कुछ अधिक नहीं था, प्रत्यक्ष उसके पैरों के पास आ पहुँचा है। महाकवि कालिदास के वे शब्द जो कभी उसने किसी पुस्तक में पढ़े थे—'प्रेम की आग जब भी लगती है दोनों ओर से धधक उठती है।' मानो वास्तविकता का रूप धारण कर उसके सामने उपस्थित थे।

और फिर चौथा पैराग्राफ—

"तब मैंने दिल से अन्तिम फैसला कर लिया कि आप इसका चाहे कुछ भी अर्थ लगाएँ, मुझे दिल की बात आपके आगे खोल ही देनी चाहिये। और यही सब सोच-

कर दे बे-सिर-पैर की बातें इस समय (दिन-चढ़े) लिख रहा हूँ।

अन्त में बिना घुमाव-फिराव के बता देना चाहता हूँ कि जिसने मेरे सम्पूर्ण जीवन पर अधिकार जमा लिया है, जिसके प्रेमपाश में उलझकर मैं सारे संसार को भूल गया हूँ, वह है आपके कोषपाल की लड़की—सी···।

"मा···भा···आ···थे !" पंक्ति के अन्तिम शब्द का पूर्वार्द्ध 'सी' पढ़ लेने के बाद उत्तरार्द्ध 'मा' बोलने की शक्ति रमेन्द्र में न रह गई। चोट से कोई कटारी-सी चीज उसके अन्तर में घुस पड़ी और पड़ते ही जिसने मानो रमेन्द्र का शरीर कण-कण करके हवा में बिखेर दिया। वह सारी-समूची मानो हवा में उड़ गई। पत्र में और भी कुछ पढ़ने को शेष है, इसकी ओर इसका ध्यान नहीं रहा।

कागज उसके सामने फर्श पर बिखरे पड़े थे, जो हवा की सरसराहट से गतिमान हो रहे थे। रमेन्द्र की भयभीत आँखें उस पर कुछ इस प्रकार जमी थीं जैसे तुषारपात हो जाने पर किसान अपने नष्ट हो चुके खेत को देख रहा हो।

एक मिनट, दो मिनट, तीन मिनट बीत गए। रमेन्द्र की दशा परिवर्तित नहीं हुई। मिट्टी का लौंदा-सी वह निस्पंद बनी हुई थी। न कुछ सोच रही थी न कुछ समझ रही थी—सोचने और समझने योग्य ही वह कहाँ थी! योग्य थी या नहीं, पर मिट्टी का वास्तविक लौंदा न होकर थी तो आखिर हाड़-मांस का पिण्ड! निस्पंद होने पर भी प्राण तो उसे छोड़ नहीं गए थे! साँस जो चल रही थी! दिल की धड़कन जो कायम थी! और इस सबने मिलकर शायद रमेन्द्र को झिंझोड़ डाला। उसकी आँखों की पुतलियाँ गति करने लगीं। हाथ बढ़ाकर उसने बिखरे हुए कागजों को समेटा। साथ ही भीतर से कोई सूक्ष्म रमेन्द्र पुकार उठी—पुकार नहीं, दुत्कार उठी—

अरी, तू तो प्रायश्चित करने चली थी न! याद है कुछ? डींग जो हाँकी थी तूने कि मैं अपने पिता के पाप का प्रायश्चित करूँगी। अरी मूर्खा, इतना भी नहीं जानती कि जिस प्रायश्चित का भार उठाकर तू घर से निकल खड़ी हुई थी वह इतना सहल नहीं था? उसके

लिए दिल्ली आकर बस [illegible] ताकना और लौट आना ही पर्याप्त नहीं था। पगली, इसमें [illegible] क्या प्रायश्चित ? प्रायश्चित का अर्थ है 'बलिदान'। और किसी महापाप का प्रायश्चित करने के लिए साधारण बलिदान से भी काम नहीं चलता। 'महापाप' के लिए 'महा बलिदान' किया जाता है अर्थात् 'प्रेम का बलिदान'। और मूर्ख, अब जब इसका अवसर आ पहुँचा है तो लगी तुझे बेचैनी होने ? सोच तो जरा !

ठीक है !...ठीक है !...झटके से उठ खड़ी हुई रमेन्द्र—यही तो है वास्तविक प्रायश्चित ! सचमुच मैं तो भ्रम में ही पड़ी रही। मैं तो अपने-आप को धोखा ही देती रही। प्रेम का बलिदान...हाँ-हाँ, प्रेम का...प्रेम का बलिदान।'

वह उठ खड़ी हुई। उसने इधर-उधर नजर घुमाकर ताका। कुछ ही दूरी पर रतना मटरगश्ती कर रहा था—शायद प्रतीक्षा में या रमेन्द्र को एकान्त में पत्र पढ़ने का अवसर देने के विचार से।

रमेन्द्र ने वहीं से आवाज लगाई—"रतने ! तुम लौट जाओ। मैं थोड़ी देर से आऊंगी।"

"अच्छी बात, बीबी जी !" कहते हुए रतना लौट गया।

रमेन्द्र जहाँ से उठी थी, फिर से वहीं बैठ गई। शायद पत्र का शेष भाग पढ़ने की याद हो आने पर।

उसने वहीं से पढ़ना आरम्भ किया, जहाँ से छोड़ा था—

"क्षमा चाहता हूँ, बीबी जी, मैंने कभी कोई बात आपसे छिपाई नहीं थी। केवल यही एक ऐसा मामला है जो मैंने आपसे छिपाए रखा—न जाने क्यों ऐसा किया मैंने। शायद डर के मारे कि कहीं आप नाराज न हो जाएँ कहीं, आप यह न सोचने लगें कि कमीने को घर में आश्रय क्या दिया कि घर के लोगों से ही प्रेम की पेंग बढ़ाने लग गया। पर सच जानिये, बीबी जी, इसमें मेरा दोष नहीं था। खुद लीला ने ही इस भेद को छिपाए रखने को कहा था।

अब जो इस गाँठ को खोल ही दिया है तो इतना

और भी बताए देता हूँ कि आपकी लीला के साथ विवाह करने तक की बातें भी हम दोनो में कही-सुनी जा चुकी हैं। अब जो बाकी है तो केवल आपकी मजूरी, जिसके बिना न तो लीला कुछ कर सकती है, न मैं, और न ही लीला का पिता।

अब पूछेंगी कि तुम दोनो में यह सम्बन्ध कैसे स्थापित हुआ और कब से हुआ। तो विनय करता हूँ कि इन प्रश्नों का उत्तर आपकी लीला ही ठीक से दे पाएगी, मुझमें इतना साहस नहीं है।

आपकी अनुमति पाने की प्रतीक्षा मे,

आपका चरण-सेवक
आपका तुच्छ सेवक
रतना"

३८

कोठी तक पहुँचते-न-पहुँचते रमेन्द्र पूर्णतया सँभल चुकी थी—शायद उसी डाँट-डपट के फलस्वरूप जो पत्र पढते समय उसकी अन्तरात्मा ने उसे पिलाई थी।

उधर रतना जब लौटा तो उसकी टाँगें कुछ लड़खड़ा रही थीं। किसी आत्म-संघर्ष में शायद। सम्भवतः यह सोचते हुए कि भाग्य-विधाता उसे क्या प्रदान करने वाला है, वरदान अथवा शाप? बहुत यत्न करने पर भी वह रमेन्द्र के स्वर से, चाल-ढाल से या उसकी मुद्रा से कुछ नहीं जान पाया। उसे कुछ ऐसा लगा, जैसे उसकी 'बीबी जी' ने इस समय अपने मनोभावो के चारों छोर समेट रखे हैं और चौकसी से, मानो रमेन्द्र उसके लिए एक पहेली बन गई हो जिसका समाधान सिर पटकने पर भी वह नहीं कर पा रहा था। इस स्थिति मे अब इस गुत्थी को सुलझाने का साधन उसकी नजरों में यदि कोई

रह गया था तो मात्र यही—उसके जीवन-क्षेत्र में हलचल मचाने वाली युवती लीला ।

और इसके थोड़ी ही देर बाद अलग-अलग कमरे में रमेन्द्र और लीला आमने-सामने बैठी थी ।

"फर्श पर क्या च्यूँटियाँ गिन रही है, री ? इधर देख मेरी तरफ ?"

और जब फिर भी लीला च्यूँटियाँ गिनने से नहीं टली तो रमेन्द्र ने स्नेहयुक्त नजरों से उसे ताका और स्वर में वैसी ही ममता लाकर उसकी गर्दन में दोनों बाँहों की माला डालते हुए कहा—

"इधर देख, मेरी बुलबुल ।" और साथ ही हँसते-हँसते रमेन्द्र लोट-पोट हो गई । यह 'बुलबुल' सम्बोधन न तो रमेन्द्र के लिए नया था, न ही लीला इससे अपरिचित थी । पहले भी, जब कभी दोनों हास-विलास के रंग में डूबी होतीं, या जब कभी रमेन्द्र 'लीला' की सुन्दरता का बखान करने लग जाती तो प्रायः यही 'मेरी बुलबुल' कहकर उसे छेड़ा करती थी, जिससे कभी तो लीला रूठ जाने का स्वांग भरती और कई बार इतने जोर-जोर से हँसने लग जाती मानो उसकी बगलों में किसी ने गुदगुदा दिया हो । पर इसके विपरीत आज न तो लीला रूठी और न ही हँसी । उस पर गाम्भीर्य का रंग पूर्ववत् ही छाया रहा—वह टस-से-मस नहीं हुई ।

इस अनोखी प्रतिक्रिया से रमेन्द्र कुछ खीज-सी उठी या कहिये कि खीजने-जैसी मुद्रा बनाकर बोली—

"सुनती नहीं, री ? अच्छा जा, दफा हो जा !" और कहते-कहते रमेन्द्र उठ खड़ी हुई । पर इससे पहले कि वह दरवाजे की ओर पाँव बढ़ाती, लीला ने आगे बढ़कर उसे बाँहों में भर लिया ।

"नाराज हो गईं, बहन जी ! अच्छा, बैठ जाइये । कहिये, क्या कहना है !"

रमेन्द्र जहाँ बैठी थी, वहीं बैठ गई । लीला को खींचकर उसने अपने साथ सटा लिया और इस तरह उसे सहलाने लगी जैसे युवती के स्थान पर लीला दो-चार वर्ष की बालिका हो ।

"इधर देख !"

लीला अब निर्भीक होकर उसकी ओर देखने लगी ।
"सच-सच बताना जो पूछूँ ।"
"अच्छा ।"
"अरे ! फिर वही पागलपन ! उधर मत ताक । इधर, हाँ, इस तरह । अच्छा बता तो, यह नाटक कब से शुरू हुआ ?"
उत्तर में लीला मात्र मुसकराकर रह गई ।
"फिर वही ? नालायक कहीं की !" और कहते-कहते रमेन्द्र ने एक हल्की-सी, मीठी-सी चपत उसके गाल पर रसीद की ।
"तभी से बहन जी, जब से…" लीला हँसकर बोली ।
"हाँ-हाँ, कहे जा न ! अरी, मैं तुझे खा नहीं जाऊँगी, पगली ! हाँ, क्या कहा—कब से ?"
"जी…जी…उसी दिन से जिस दिन से वह यहाँ आ…"
सहसा रमेन्द्र को याद हो आया, जिस दिन पहले-पहल रतना के साथ उसकी लम्बी-चौड़ी बातें हो रही थीं और उधर लीला छिपकर सब सुनती रही थी ।
"अच्छा फिर ? उसके बाद क्या हुआ ?"
लीला को फिर से लजाते पाकर रमेन्द्र ने उसे यह कहते हुए एक बार फिर अपने साथ भींच लिया—"शर्माती क्यों है, चुड़ैल ? तुम दोनों का जोड़ जुड़ने की खुशी में मैं तो फूले नहीं समा रही हूँ, और तू है कि मुझसे छिपे-छिपे ही आज तक ये सब करती रही ! भला, लीला ! क्या मैं तेरी कुछ नहीं होती थी ? तुझे सुहागिन देखकर क्या मुझे डाह होती ? पर मैं नहीं जानती थी कि तेरे पेट में इतनी दाढ़ी है ।" और बोलते-बोलते न चाहने पर भी रमेन्द्र ने एक लम्बी-सी आह भर डाली । उसकी आँखें भी अंशतः तरल हो गईं, जिन्हें लीला से छिपाने के लिए उसने सामने दीवार पर लगे क्लॉक की ओर ताका और बोली—"ज़रा देख तो लीला, क्लॉक कुछ धीमा चल रहा है । शायद चाबी देना रह गया है ।"
लीला अपनी जगह से उठी और जाकर उसने क्लॉक को देखा-परखा और लौटकर बोली—"चाबी तो भरी हुई है, बहन जी !"
"अच्छा बैठ जा ।" तब तक रमेन्द्र आँखें पोंछ चुकी थी, "क्या

कह रही थी मैं ? आ गया याद । तो मैंने कहा, मेरी बुलबुल रानी, मेरी खुशी का तो आज अन्त नहीं रहा, जब से रतना ने यह बात बताई । बड़ी नटखट है तू ! अरी, मैं तो समझती थी कि तेरे मुँह में दाँत ही नहीं हैं । पर तू तो…"

लीला ने हाथ बढ़ाकर रमेन्द्र का मुँह बन्द कर दिया—"अब जाने दो, भाभी जी ! मैंने जान बूझकर थोड़ी छिपाई थी बात । एक छोड़, हजार बार चाहा कि सब-कुछ कह डालूँ, पर वे जो नहीं मानते थे, फिर मैं क्या करती !"

"वे कौन थे ?" छेड़ने के इरादे से पूछा रमेन्द्र ने । लीला का माथा घुटनों पर जा टिका ।

"अच्छा, छोड़ इस पाखण्ड को और एक ही साँस में सब कह डाल, तुझे मेरे सिर की सौगन्ध ।"

लीला को मानो इस 'सिर की सौगन्ध' शब्द ने एक के स्थान पर दस-पाँच जुबानें प्रदान कर दीं और सचमुच एक ही साँस में आदि से अन्त तक सभी कुछ बताती चली गई । उसने सारी बातें ज्यूँ-की-त्यूँ उगल डालीं—किस प्रकार रतना की उस पर और उसकी रतना पर नजर जा ठहरी और तत्पश्चात् जब लीला को दिल्ली जाने का अवसर मिला, फिर तो रास्ता और भी साफ हो गया । यहाँ रहते समय जब-जब भी रमेन्द्र कोठी से बाहर निकलती और पंचू अफीम खाकर सो जाता तो इन दोनों में प्रेमालाप का क्रम चलने लगता, जो शनैः-शनैः नहीं बल्कि तेजी से बढ़ने लगा । फिर प्रणय-बन्धन में बँधने की बातें चलने लगीं, प्रण लिये जाने लगे, लम्बी-चौड़ी योजनाएँ बनने लगीं और अन्ततः नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि किस ढंग से इस मामले को बड़ों तक पहुँचाकर उनकी स्वीकृति प्राप्त की जाए ।

लीला ने आगे बताया कि यहाँ पहुँचकर दोनों में एक विवाद खड़ा हो गया । रतना लीला से आग्रह करता कि वही इस काम को निभाए, पर लीला इस बात पर अड़ गई कि इसका साहस रतना को ही करना होगा । इतना तो दोनों ही जानते थे कि इस घर में सब छोटे-बड़े काम रमेन्द्र की ही इच्छा पर निर्भर करते हैं और

उसी की स्वीकृति से यह काम सम्पन्न हो पाएगा, पर दोनों में से किसी में भी रमेन्द्र के सामने जुबान खोलने का साहस नहीं हो रहा था। साथ ही लीला ने यह भी बताया कि उसका पिता तो पहले से ही रतना पर लट्टू था, तभी तो एक दिन पंचू ने हँसी-हँसी में लीला से कह दिया था—कितना सलोना छोकरा है! अगर लीला, तेरे लिए भी कोई ऐसा लड़का मिल जाता···

लीला ने आगे बताया—इस बीच उसे अपने पिता के साथ दिल्ली से लौट आना पड़ा और लौटने से पहले रतना ने उसे आश्वासन दिलाया था कि चाहे जैसे भी बन पड़े, वह आजकल में ही अपने मन की बात 'बीबी जी' से कह डालेगा। पर अमृतसर लौटने पर जब रतना ने उसे बताया कि वह इस कार्य में असमर्थ रहा है तो लीला को निराशा तो नहीं, पर धक्का जरूर लगा। तब दोनों में नए सिरे से इसी पर विवाद चलने लगा, जिसके परिणाम-स्वरूप अन्त में यही तय पाया कि यदि मुँह से बोलकर नहीं तो कागज पर लिखकर ही यह बात रमेन्द्र तक पहुँचाई जाए और इसकी जिम्मेदारी रतना ने अपने ऊपर ले ली। तब लीला ने उसे इस बात का आश्वासन दिलाया कि यदि एक बार रतना इस मामले को रमेन्द्र तक पहुँचा देगा तो उसके बाद वह भी 'बहन जी' के सामने अपने मन की सब बातें रख सकेगी। बाकी रहा लीला के लिए अपने पिता की स्वीकृति पाने का प्रश्न। इसकी लीला को न तो विशेष चिन्ता थी, न ही आवश्यकता, जबकि उसे मालूम था कि रमेन्द्र पर पंचू का देवी-देवताओं जैसा विश्वास और श्रद्धा थी। अतः रमेन्द्र का सहमत होना पंचू का सहमत होना था।

और इसके थोड़ी देर बाद जब लीला अपने क्वार्टर की ओर लौटी तो आह्लाद-प्रेमोन्माद और किसी अलौकिक प्राप्ति के उद्गार उसके सीने से मिटाए नहीं मिट रहे थे। चलते हुए उसके पाँव तक सीधे नहीं पड़ रहे थे। गिर जाने की सम्भावना से वह सँभल-सँभल-कर चल रही थी। एक नया अनूठा संसार उसकी आँखों में निर्मित हो रहा था।

३६

"अरे ! यह क्या हो रहा है, रमेन्द्र ?"

"कुछ नहीं, माता जी, कालिज जा रही हूँ, सवेरे पहली गाड़ी से ।"

"कालिज ? आँख भी नहीं लगाई है तूने ? अभी तो तीन-चार छुट्टियाँ बाकी हैं बेटी ?"

"यह तो जानती हूँ, माता जी !" इधर-उधर से अपनी किताबें-कापियाँ उठा-उठाकर ट्रंक में भरते हुए रमेन्द्र बोली—"चलिये अपने कमरे में । वहीं आकर बताती हूँ । आप यहाँ क्यों चली आईं ?"

अधिक चलने-फिरने की शक्ति अभी भजनकौर में नहीं थी । डाक्टर ने उस पर रोक लगा रखी थी । फिर भी उससे नहीं रहा गया, जब रमेन्द्र बुलाने पर भी नहीं आई । रात भी उसने कुछ नहीं खाया था । लड़की का मूड भी कल से कुछ ऐसा-वैसा ही दिखाई दिया था उसे । बार-बार बुलवाने पर भी जब रमेन्द्र नहीं आई तो भजनकौर स्वयं ही लाठी का सहारा लेकर चली आई ।

लड़की कहीं अधिक न खीज जाए, इसी से रमेन्द्र का उत्तर सुनने के बाद भजनकौर ने अधिक टीका-टिप्पणी करना योग्य नहीं समझा और अपने कमरे में जाकर प्रतीक्षा करने लगी ।

इधर रमेन्द्र कुछ इस ढंग से अपनी क्रियाओं में व्यस्त थी जैसे किसी अत्यावश्यक काम से उसे गाड़ी पकड़नी हो और गाड़ी छूट जाने की सम्भावना हो ।

उसका काम समाप्त नहीं हो पाया था । अभी उसे कितना ही कुछ समेटना था, पर इस आशंका से कि कहीं माता जी को दोबारा आने का कष्ट न हो, वह दूसरे कमरे की ओर चल दी ।

कमरे में जाकर रमेन्द्र ने भजनकौर को दरवाजे में खड़ी पाया और बड़ी ही उत्सुकता में । जाते ही उसने उसे थामकर पलंग पर बिठला दिया और स्वयं भी बैठकर बोली—

"कालिज से अर्जेण्ट लैटर आया है, माता जी, कि जल्दी आ ।"

"तो ऐसा क्या काम पड़ गया तेरे कालिज वालों को ?"

"वहाँ एक नाटक खेलने का प्रोग्राम है। यह तो आप जानती ही हैं कि मैं ड्रामेटिक क्लब की इचार्ज हूँ, इसी से…"

अब भजनकौर क्या करे! बोली—"जैसी तेरी इच्छा।"

रमेन्द्र मन-ही-मन प्रसन्न हुई। अपनी माँ के स्वभाव से वह परिचित थी और जानती थी कि जब तक वह ऐसी ही कोई घटना नहीं गढ़ेगी, तब तक माँ उसे यहाँ से हिलने नहीं देगी।

"माता जी," शब्दों को खूब नाप-तोलकर रमेन्द्र ने दूसरा प्रसंग चलाया—"एक बात कहूँ?"

"क्या?"

"रतना के बारे में आपका क्या विचार है?"

बात भजनकौर की समझ में नहीं आई—"क्या मतलब?"

"मेरा मतलब है कि वह आपको कैसा लगता है?"

उत्तर देने के स्थान पर भजनकौर ने एक लम्बी साँस छोड़ी—"बेचारा बदनसीब! अरी, तेरे पिताजी की ही तो मेहरबानियाँ हैं न! न बेचारा दीन का रहा न दुनिया का। माँ गई, बहन गई, इज्जत-आबरू, सभी-कुछ जाता रहा। कभी-कभी सोचती हूँ, क्या बनेगा उसका? कैसे भूल पाएगा दिल पर लगी इन चोटों को? मैंने तो यही तय किया है, रमेन्द्र, कि जब हमारे ही कारण उसका सब-कुछ बरबाद हुआ है तो हम अगर उसके लिए और कुछ नहीं कर सकते तो कम-से-कम उसे आश्रय तो देना ही होगा।"

"मैं भी यही चाहती हूँ, माता जी! दिल्ली रहकर कई बार उससे बातें हुईं। मैंने उसे पूरे तौर से यकीन दिलाया कि उसे दिल छोटा नहीं करना चाहिए। उसकी माँ अगर मर गई है तो मेरी माँ जो है! उसकी बहन अगर नहीं रही तो मैं जो हूँ!"

"शाबाश, मेरी अच्छी बेटी, शाबाश!" रमेन्द्र की पीठ थप-थपाते हुए भजनकौर गद्गद कण्ठ से बोल उठी—"तूने मेरे मन की ही बात कही उसे। इधर जब से वह दिल्ली से लौटा है, मैंने भी दो-एक बार इसी तरह का ढाढ़स बँधाया उसे।"

रमेन्द्र कुछ रुआँसे स्वर में बोली—"बहुत भला लड़का है। मुसीबतों में पड़कर बेचारा सब किसी से वंचित रह गया, नहीं तो

पढ़-लिखकर कहीं-से-कहीं पहुँच गया होता। यही उसकी समझ पाई है। दिल का इतना साफ कि किसी और आँख उठाकर ताकने का रवादार नहीं। खैर, यह तो हम सबको मालूम है। मैं एक और बात कहना चाहती हूँ आपसे।"

"सो क्या?"

"अगर…अगर माता जी, लीला के साथ उसकी शादी हो जाए तो कैसा रहे?"

सुनकर भजनकौर खिल ही तो उठी—"अरी, सच! यह तो बहुत ही अच्छा होगा, पंचू अगर मान जाए।"

"उसकी चिन्ता नहीं, माता जी! उसने तो इस बारे में सभी-कुछ हम लोगों पर छोड़ रखा है। रात मैंने बात की थी उसके साथ।"

"तो क्या कहा उसने?"

"कहने लगा—विद्या, इसके बारे में मुझे पूछने की क्या जरूरत है! लीला तेरी छोटी बहन है। सो माता जी से सलाह कर लेना और फिर जैसा भी आप लोग करेंगे, मुझे मंजूर है।'

"पर रतना से भी तो पूछ लेना चाहिए, कहीं ऐसा न हो कि…"

रमेन्द्र ने टोक दिया—"यह तो, माता जी, पहले से ही मरा जा रहा है उसके लिए।"

"सच?"

"तो और क्या झूठ?"

"फिर तो बस, ठीक है। फिर देर काहे की!"

"तो ऐसा करना, माता जी, आप पंचू को बुलाकर बात पक्की कर देना और पिता जी को भी सब बता देना।"

भजनकौर ने बात को और बढ़ावा दिया—

"यह तो रमेन्द्र, तुमने बहुत ही अच्छी बात सुनाई। मुझे कभी-कभी इसके बारे में चिन्ता होने लगती थी, जब उसे देखती। मरी ने राजकुमारियों जैसा तो रूप पाया है और भगवान ने जन्म दे दिया गरीब के घर में वह भी निगोड़ा अफीमी। सोचती थी, जमाना खराब है। कहीं ऐसा न हो कि कोई गड़बड़ हो जाए। लड़की भी तो कम नटखट नहीं। उस दिन बेचारा अपने दुखड़े रोने लगा।"

"कौन ?" रमेन्द्र ने पूछा—रतना ?"

"रतना काहे को ! वह बेचारा तो गऊ समान है ; पंचू की बात कह रही हूँ।"

"क्या कहता था पंचू ?"

"छोकरी की ही बातें ले बैठा बेचारा। कहने लगा—क्या बताऊँ माता जी ! इस लड़की के मारे तो नाकों दम है मेरा। कहने लगा न जाने क्या समाया है इसकी खोपड़ी में जो आसमान पर नजरें टिकाए रहती है। कहने लगा—अपनी जात-बिरादरी में एक लड़का ठीक किया था। जब मैंने लीला से बात चलाई तो लग गई नाक से साँप-बिच्छू गिराने—मुँह फाड़कर कह दिया कि मुझे नहीं चाहिए ऐसा लड़का।"

"मगर माता जी," रमेन्द्र ने तुर्रा दिया—"रतना को तो वह खूब चाहती है और रतना भी उसके साँसों जीता है।"

"सच !" भजनकौर प्रोत्साहित हो उठी—"फिर तो बात बनी-बनाई है। तब झटपट ही इनके भाँवर हो जाने चाहिएँ और इस काम को मैं करूँगी।"

माँ को सहसा गुम-सुम पाकर रमेन्द्र बोली—"नींद आ गई ?"

"नहीं तो !"

"तो इस तरह चुप क्यों हो गईं आप ?"

"मैं दूसरी ही बात सोचने लगी हूँ।"

"क्या ?"

"कि जिस काम के लिए इतने दिनों से मैं लम्बी-चौड़ी बातें सोचती आ रही थी, वह तो सब धरी-धराई रह गईं और तू छुट्टियाँ गुजारकर लौट भी चली।"

भजनकौर का संकेत किस 'बात' की ओर है, इसे समझते हुए रमेन्द्र बोली—"उस किस्से को बन्द ही रहने दीजिये, माता जी ! मुझे अभी शादी-वादी के झंझट में नहीं पड़ना है।"

"क्या कहा ? अभी नहीं तो क्या बूढ़ी होकर ?"

"मुझे अभी बहुत-से काम निपटाने हैं, माता जी ! उसके बाद देखा जाएगा। पिता जी से भी कह देना कि इसके बारे में वे कहीं

कोई बात न कर बैठे, मुझे भी पीछे उसकी परेशानी उठानी पड़ेगी।"

सुनकर भजनकौर का उत्साह शिथिल हो गया। लड़की मन-मानी करने पर उतारू हो जाए तो किसी की एक नहीं सुनेगी अतः उसने इस मौके पर बात बढ़ाना योग्य नहीं समझा। फिर भी जिज्ञासा मिटाने के लिए इतना तो पूछा ही—"क्या कहा? तुझे अभी बहुत-से काम निबटाने हैं? कौन-से काम री?"

और उत्तर में रमेन्द्र कितना ही कुछ कहती चली गई—मुझे आगे और पढ़ाई करनी है…मुझे विलायत जाना है…यह करना है, वह करना है। सुनते-सुनते ऊब सी तो उठी भजनकौर। पर बात टोकने का साहस कहाँ से लाए?

४०

गाड़ी आने वाली थी। प्लेटफार्म पर मुसाफिरों की भीड़ थी। सब गाड़ी आने की प्रतीक्षा में थे।

गाड़ी आ रही थी। प्लेटफार्म पर भगदड़ मच गई—'कुली! कुली!' की आवाजें गूंज उठीं।

रमेन्द्र के कुली ने सामान उठाया। आगे-आगे कुली और पीछे-पीछे रमेन्द्र।

कम्पार्टमेंट में प्रविष्ट होकर रमेन्द्र ने अपनी सीट सँभाली। कुली ने वर्थ पर सामान टिका दिया और मजदूरी लेकर चलता बना।

सीट पर कुछ इस ढंग से रमेन्द्र जा बैठी जैसे किसी ने उसे पकड़कर बलपूर्वक पटक दिया हो।

रमेन्द्र बेंच से पीठ सटाए बैठी थी और आँखें उसकी छत पर के बन्द पंखे को कुछ इस तरह से निहार रही थी मानो पंखा नहीं, एक नन्हा बालक हो—गहरी नींद में हल्के-हल्के साँस ले रहा बालक। वही बालक, जिसे अब से थोड़ी देर पहले उसने आलिंगन किया था, जिसकी निद्रामग्न आँखों और भरे-भरे गालों को उसने बार-बार

…अरे ! यह मैं क्या आसमान जैसी सोचने लगी हूँ ! रुलाई मुझे क्यों आती है, न जाने। मुझे क्यों रोना है ? क्या कुछ खो बैठी हूँ मैं ? कुछ भी तो नहीं खोया है !

गाड़ी ने गति पकड़ी। उधर रमेन्द्र के विचार भी गतिमान हो उठे—गतिमान और परिवर्तित…

…आह ! कैसे भागी थी ! अरी ओ रमेन्द्र। तू तो प्रायश्चित्त करने चली थी न ! यह बड़े भाग का प्रायश्चित्त ! अरी, तू तो कभी-कभी सोच लेती थी—मैं यह करूँगी, वह करूँगी। और उस जरा-सी बात पर पूरी टेक दिये तूने ! धिक्कार है तुझे ! कहाँ चल पड़ी भला तू ! पाप के लिए मरघट ढूँढने ! कहाँ पर लगा दी तुने पाँव ? क्या ली ! ओछी नहीं थी ! …कुलटा !—थोड़े पानी की मछली !…धन गोद पीड़ि !

सहसा रमेन्द्र उठ खड़ी हुई, मानो गाड़ी से उतरना चाहती हो। पर गाड़ी तो अब तक पूरी गति पकड़ चुकी थी।

और धम्म से वह बैठ गई।

गाड़ी लाहौर की ओर जा रही थी। रमेन्द्र—सूक्ष्म रमेन्द्र अमृतसर की ओर उड़ी जा रही थी यह पुकारते हुए।

'नहीं। मुझे कहीं नहीं जाना है। दूसरी गाड़ी से लौट आना है मुझे अपने किशोर के पास। घबरा जाएगा बेचारा…और… मुझे जाकर लीला का ब्याह भी तो रचाना है !…और…और रतना को किसी अच्छे काम पर लगाना है…तभी तो प्रायश्चित्त पूरे तौर से हो पाएगा !

●●